त्रिपथगा

(त्रिकमार्ग पर प्रवहणशीला भागीरथी)

सम्पादक

प्रो0 मखनलाल कुकिलू

त्रिपथगा
प्रो0 मखनलाल कुकिलू

त्रिपथगा

(त्रिकमार्ग पर प्रवहणशीला भागीरथी)



संपादक

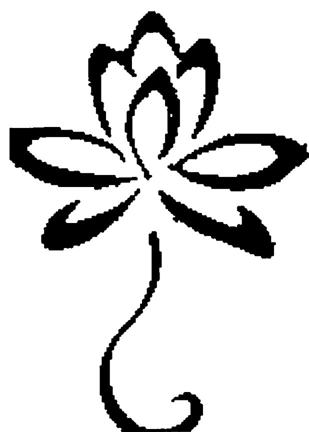
प्रो० मखनलाल कुकिलू

प्राप्ति स्थान
1. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, निशात, श्रीनगर-कश्मीर
2. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, महेन्द्र नगर, जम्मू
3. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, सरिता विहार, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण :
मार्ग शुक्लपक्ष द्वितीया, 2013
शारिका जन्म शताब्दी दिवस
मूल्य : ₹ 200/-

मुद्रक :
मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशंस
4225ए, 1 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002

श्री शारिका देवी के जन्म शताब्दी दिवस
के उपलक्ष्य में चरण कमलों पर
सादर समर्पित भावपुष्पांजलि



विषयानुक्रमणिका

श्री शारिका देवी जी

—प्रभा देवी

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य श्री गुरुदेव ईश्वर-स्वरूप जी की प्रधान शिष्या देवी शारिका जी को भला कौन कश्मीरी पंडित नहीं जानता। आजन्म गुरु-चरणों में अन्तर्मुख रह कर रहस्य रूप से काल-यापन करने में ही ये आनन्दित रही हैं। गुरुदेव इन्हें पत्राचार में ब्रह्मवादिनी की उपाधि से सुशोभित करते थे।

अन्तर्मुख रहना ही इनके जीवन का परम लक्ष्य रहा है। व्यर्थ के कार्य-कलापों में इनका मन कभी नहीं फंसा है। सदा प्रसन्न रहना इनका विशेष गुण था। गुरु-आज्ञा का पालन करना इनका निजी स्वभाव था। प्रत्येक व्यक्ति से मधुर भाषण करने का स्वभाव इनका स्वाभाविक था। इन सभी गुणों के अतिरिक्त इनका जो तात्त्विक गुण था वह था अपने वास्तविक साधु स्वभाव को छिपाना तथा निरभिमान होकर अपनी अवस्था को न दर्शाना।

अभिमानं सुरापानं, गौरवं घोर रौरवम्।
प्रतिष्ठा सूकरी विष्ठा, त्रयं त्यक्त्वा सुखी भवेत्॥

यह कथन ही देवी जी का जीवन-दर्शन रहा है। सदा अनुसंधान करते हुए सजग रह कर आश्रम के कार्य निभाने में यह प्रवीण थीं। किसी के बहकावे में आकर ये अपने लक्ष्य से तनिक भी खिसकती नहीं थी। हर कार्य इनका सुव्यवस्थित होता था। इन्हीं गुणों के कारण गुरुदेव श्री ईश्वर-स्वरूप जी को अन्य किसी भी शिष्य को अपने साथ अहर्निश रखना पसन्द न था। आजन्म देवी जी प्राणपन से अपने गुरुदेव के साथ रही हैं। इनकी सम्पूर्ण जीवनी का उल्लेख मैंने 'भावार्चन' पुस्तिका में किया है। ई० सन् १९९१ के फरवरी मास में देवी

जी ने आश्रम श्रीनगर से जम्मू में आकर भौतिक शरीर को छोड़ा और सदा के लिए परमात्मा में लीन हो गई। इधर हमारे गुरुदेव भी देवी जी के वियोग को अधिक समय तक सहन न करके ठीक उनके छः मास के बाद ही १९९१ के सितम्बर मास में ही प्रयाण कर गये। दोनों गुरु-शिष्य का एक ही वर्ष में स्वर्गारोहण हुआ। इस दैवी लीला को देख कर जनता विस्मित हो गई। वास्तव में यह दोनों महान् विभूतियां काश्मीर देश की अमूल्य निधि थीं। इन दोनों गुरु-शिष्य की स्मृति हमारे हृदय-पटल में सदा अंकित रहे इसी भावना को लेकर मैं नत मस्तक होकर दोनों को प्रणाम कर रही हूँ। उनका वरद हस्त हम सभी शिष्यों पर सदा रहे।

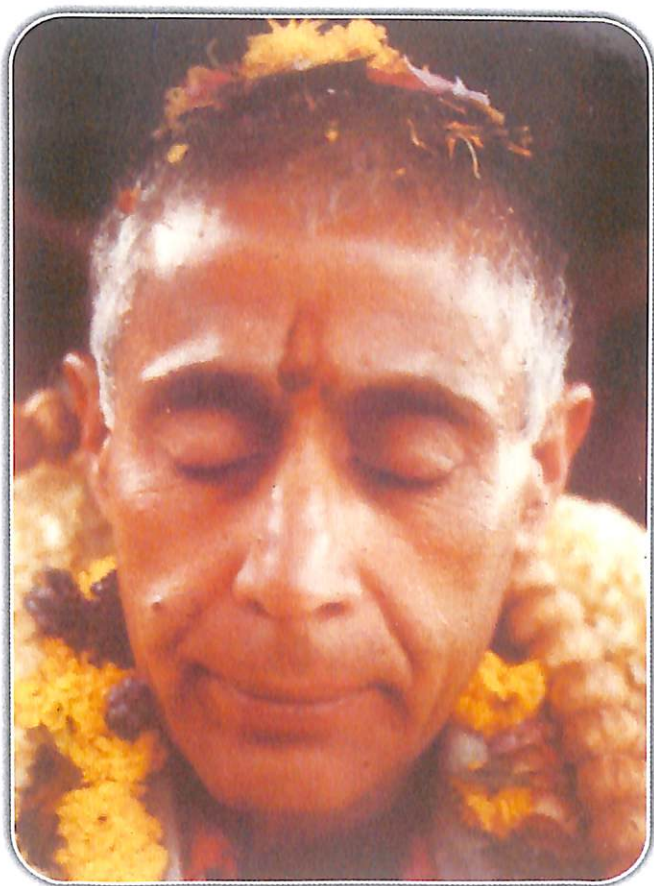
जय गुरुदेव जय श्री माता देवी शारिका जी।

पूर्वकालीन स्मृतियों का स्मरण करना या यदा-कदा उन स्मृतियों के पन्नों को नेत्रों का विषय बनाना आत्मा को प्रसन्न रखने का उपाय सा बन जाता है। न जाने कई वर्षों के बाद मैंने अपने गुरुदेव के पत्रों को, जो महाराज जी ने जम्मू, दिल्ली, कलकत्ता या श्रीनगर से हमें लिखे थे पढ़ा, उनके पढ़ने से पूर्व स्मृति के सभी अवयव चित्र की भांति प्रत्यक्ष दिखने लगे तथा महाराज जी का वरद हस्त सत्यतः शिर पर रखा हुआ प्रतीत हुआ। इन में कई पत्र माता शारिका देवी के नाम से भी हैं। यह पत्र, पत्र-मात्र नहीं है। इन में महाराज जी का सद्उपदेश, उनका दूध से धोया हुआ बालकवत् हृदय झलकता है। वे सर्वज्ञ होकर जानते थे – "हमारे पास अहर्निश निकट वही विभूति रह पायेगी जो स्वयं आत्मा का अन्वेषण करने में लगी होगी।" तभी तो देवी शारिका जी को महाराज जी ने कभी इधर-उधर जाने को अवकाश ही नहीं दिया। इसी मिस से मैं भी इन दो महान विभूतियों के साथ चिपटी रही–फल यह हुआ मेरी आत्मा प्रफुल्लित होकर संसार के झंझावातों से न घबरा कर गुरु चरणों की स्मृति से पावन हो गई।

गुरुदेव की कृपा तथा आन्तरिक प्रेरणा होकर शारिका शताब्दी जयन्ती महोत्सव पर साधक लेखकों के व्यक्तिराज अनुभवों-विचारों तथा आस्था से जुड़े कुछेक लेखों के साथ हम इन पत्रों को भी लिपिबद्ध कर रहे हैं। इन पत्रों के साथ एक पोस्टकार्ड महाराज जी ने अपनी एक शिष्या को उनके पोस्टकार्ड पर ही आशीर्वाद के रूप में लिखा था जो उन्हें मिला था। श्री सुधीर (वर्तमान उपकुलपति महोदय जवाहरलाल नेहरु यूनिवर्सिटी) जी को भी एक पोस्टकार्ड आशीर्वाद के रूप में लिखा था- इन दोनों को भी इन्हीं पत्रों के साथ प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है गुरुदेव के हम सत्-शिष्य इस पुस्तिका को पढ़कर उनकी प्रधानशिष्या शारिका देवी के महनीय महत्व से लाभान्वित होंगे।

इस पुस्तिका को छपवाने में जिन गुरु-भक्तों का सहयोग रहा उन्हें गुरुवर्य स्वस्थ व आयुष्मान् बनाये रखें।





महाहिमाद्रि बाल्यकाल से ही
था पराशक्ति का घनहिम खण्ड
बाह्य मौन सरल स्वभाव का
अन्तः करता विश्व का मन्थन।

संपादक की लेखनी से –

सुश्री शारिकादेवी जी की जन्मशताब्दी पर प्रस्तुत पुस्तिका त्रिपथगा, जिसमें तीन धाराओं (लेख, पत्र, तथा कविता) का संगम है, प्रकाशित करके हमें अतीव हर्ष हो रहा है। सुश्री शारिका देवी जी ने सन् 1970 में प्रथमबार प्रकाशित "मालिनी" नामक आश्रम की पत्रिका में सद्‌गुरु महाराज के अनुरोध पर जो अनुभूतिपरक लेख लिखा था, उसका पुनर्मुद्रण इस पुस्तक के आरंभ में करके पुस्तक की गरिमा का संपोषण किया। यह लेख, लेख न होकर देवी जी की उस अवस्था की ओर संकेत करता है जिस अवस्था की प्राप्ति के लिए योगीजन छटपटाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका के दूसरे खण्ड के आरंभ में सद्‌गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप जी के करकमलों से सुसज्जित पत्र उपदेश व व्याख्यान आदि स्कैन करके सर्वजन हितार्थ इस महोत्सव पर प्रकाशित करके देवी जी के प्रति सद्‌गुरु महाराज की आन्तरिक स्नेहमयी, करुणामयी तथा ओजोमयी भावना की ओर साधक भक्त जनता का ध्यान आकर्षित किया है। वास्तव में हस्तलिखित उनके ये पत्र अमूल्यनिधि हैं जिनके संरक्षण तथा पुनः पुनः अवलोकन मात्र से ही सद्‌गुरु महाराज की असीम कृपा का वर्षण सरोबार करता है। इन स्कैन किये गये ईश्वरस्वरूप महाराज के हस्तलिखित पत्रों के पश्चात् सत्संग संभाषण जो "त्रिपथगा" के तीन घटकों – ईश्वरस्वरूप, शारिकादेवी और प्रभा देवी – के बीच परस्पर परा गंगा प्रवाह से उद्‌भूत स्निग्ध सीकरों का सिंचन है, पुरानी स्मृतियों का मोहक गुलदस्ता है। इसकी सुवास अनाघ्रात है, स्वतः परिपूर्ण है तथा हृदयावर्जक है।

इस "त्रिपथगा" की प्रथम धारा में कश्मीर भूमि के प्रसिद्ध मनीषी

आचार्य डा० त्रिलोकी नाथ गंजू के संवित् हृदय से प्रस्फुटित वह भावप्रवाह है जो तटस्थ साधकों को त्रिमलतापहरण करने में सक्षम है। हमें आशा है कि विद्वान् आचार्य की लेखनी आगे भी जिज्ञासु साधकों की साध पूर्ण करने से कृतार्थ करेगी।

इस पुस्तिका की तीसरी धारा के अन्तर्गत बुभुक्षु साधकों का कविहृदय जागृत हो उठा है जो उनकी चित्शक्ति की उस दशा को सूचित करता है जिसके विषय में कहा गया है – "यत् आदौ यत् च अन्ते च यत् मध्ये तस्य सत्यता"।

अन्त में महनीया देवी जी के इस जन्म शताब्दी महोत्सव पर उन साधकों सद्गुरु भक्तों तथा सत्संग प्रेमियों का आभारी है जिन्होंने बड़ी लगन तथा निष्ठा से इस महोत्सव को चिरस्मरणीय रखने के लिए स्तुत्य प्रयास किया।

जय गुरुदेव।





बैठी निश्चल परमतत्त्व को
खोज रही बन उत्सुक मन।
देवी शारिका योगिनी रूप में
करती सद्‌गुरु का चिन्तन।

जाग्रत् आदि अवस्थाओं का निरूपण

(तन्त्रों के आधार पर)

- श्री शारिका देवी

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्य और तुर्यातीत—ये पाँचों अवस्थायें एक ही प्रमाता के साथ संबन्ध रखती हैं, अर्थात् एक ही प्रमाता कभी जाग्रत् अवस्था में, कभी स्वप्नावस्था में, कभी सुषुप्ति-अवस्था में होता है और कभी योगाभ्यास का आश्रय लेकर तुर्य तथा तुर्यातीत अवस्थाओं का अनुभव करता है।

जिस अवस्था में अधिष्ठेय-रूपता ही विद्यमान रहे और अधिष्ठातृरूपता सब प्रकार से असंविदित रहे, अर्थात् जिस समय चैत्र-मैत्र, घट-पट आदि वस्तु-वर्ग प्रमाता को वेद्य के रूप में ही प्रतीत हो जाय, वही अवस्था मुख्य रूप से जाग्रदवस्था कही जाती है। दूसरी बात यह है कि चैत्र-मैत्र आदि जाग्रत्संबन्धी जगत् में जब वेद्य-रूपता की प्रधानता हो, वह इस जाग्रदवस्था की 'अबुद्ध' अवस्था कहलाती है। इसको 'जाग्रज्जाग्रद् अवस्था' भी कहते हैं, क्योंकि यह पूर्ण रूप में जाग्रदवस्था होती है।

जब इस जाग्रदवस्था में प्रमाण-रूपता की प्रधानता रहे, वह इस जाग्रदवस्था की 'बुद्ध' अवस्था कहलाती है। इस अवस्था को 'जाग्रत्स्वप्न-अवस्था' भी कहते हैं, क्योंकि इस जाग्रदवस्था में स्वप्नावस्था का सम्पर्क भी बना रहता है।

जब इस जाग्रदवस्था में प्रमातृ-रूपता की प्रधानता रहे, वह इसकी 'प्रबुद्ध' नाम वाली अवस्था है। इस अवस्था को 'जाग्रत्सुषुप्ति' भी कहते हैं, क्योंकि इस जाग्रदवस्था में सुषुप्ति का आभास भी बना रहता है।

जब इस जाग्रदवस्था में प्रमिति-रूपता की प्रधानता रहे,

अर्थात् जब मनुष्य को किसी वस्तु के विषय में पूर्ण ज्ञान होता है और उसे उस वस्तु को फिर से देखने की कोई आवश्यकता नहीं रहती वह इस जाग्रदवस्था की 'सुप्रबुद्ध' अवस्था होती है। इस अवस्था को 'जाग्रत्तुर्यावस्था' भी कहते हैं, क्योंकि इस अवस्था में निर्विकल्पता के होने से तुर्यावस्था का भी समावेश होता है। यही बात श्री तन्त्रालोक में कही गई है-

तत्र चैत्रे भासमाने यो देहांशः स कथ्यते।
अबुद्धो, यस्तु मानांशः स बुद्धो, मितिकारकः।।
प्रबुद्धः सुप्रबुद्धश्च प्रमामात्रेति च क्रमः।
जाग्रज्जाग्रदबुद्धं तज्जाग्रत्स्वप्नस्तु बुद्धता।।
इत्यादि तुर्यातीतं तु सर्वगत्वात्पृथक्कृताः।।

यहां यह कहना भी अप्रासंगिक न होगा कि इस जाग्रदवस्था की लौकिक संज्ञा 'जाग्रत्' है, क्योंकि सांसारिक जन इसी प्रमेय-प्रधान जगत् को सत्य मान कर अपने व्यवहार में सचेत रहते हैं। योगी इस अवस्था को 'पिण्डस्थ' कहते हैं, क्योंकि इस अवस्था में उनकी दृष्टि से चैत्र-मैत्र आदि समस्त वस्तु-वर्ग एक ही प्रमेय-सत्ता में ठहरा रहता है। ज्ञानी इस जाग्रदवस्था को 'सर्वतोभद्र' कहते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि से प्रमेय-भूमि में ठहरा हुआ यह समस्त वस्तु-वर्ग शिव-सत्ता रूपी कल्याण से सर्वतः परिपूर्ण है। आचार्य अभिनवगुप्त जी तन्त्रालोक में कहते हैं-

प्रसंख्यानैकरूढानां ज्ञानिनां तु सदुच्यते।
सर्वतोभद्रमापूर्णं सर्वतो वेद्यसत्तया।।
सर्वसत्तासमापूर्णं विश्वं पश्येद्यतो यतः।
ज्ञानी ततस्ततः संवित्तत्त्वमस्य प्रकाशते।।

भाव यह है कि ज्ञानी को यह जगत् परमेश्वर का स्वरूप ही दिखाई देता है और इस वेद्य विलास-दशा में ठहर कर ही उसे सभी बाह्य तथा भीतरी अवस्थाओं में परिपूर्ण संवित्-स्वरूप का साक्षात्कार प्राप्त होता है।

अब स्वप्नावस्था को लीजिए। जिस अवस्था में घट-पट आदि

वस्तु-वर्ग प्रमाण-दशा में ठहर कर अर्थात् इन्द्रियों और अन्तःकरण में ही स्थित होकर दिखाई देता है, वही स्वप्नावस्था कहलाती है। स्वप्नावस्था का मुख्य स्थान विकल्प-मार्ग है और इसका मुख्य लक्षण अबाह्यता है। इसलिए विकल्प-मार्ग तथा स्वप्न-मार्ग दोनों वास्तव में एक ही हैं, क्योंकि इन दोनों में अबाह्यता समान रूप से ही पाई जाती है। कहा भी है–

वैकल्पितकथारूढवेद्यसाम्यावभासनात्।
लोकरूढोऽप्यसौ स्वप्नः साम्यं चाबाह्यरूपता।।

इस स्वप्नावस्था की स्थिति मनोराज्य में, स्वप्न में, संकल्पों में, स्मृति में तथा उन्माद आदि अवस्थाओं में पाई जाती है। जाग्रदवस्था की भांति इस स्वप्नावस्था में भी चार अवस्थायें होती हैं। जब उपरोक्त मनोराज्य आदि स्वप्नावस्थाओं में वह स्वप्न-जगत स्पष्ट रूप से तथा स्थिर् रूप से दिखाई देने लगता है, तो वह अवस्था स्वप्नावस्था में जग्रदवस्था है, उस अवस्था का नाम 'स्वप्नजाग्रत्' है। इस अवस्था को मालिनीविजयतन्त्र में 'गतागत' नाम दिया है, क्योंकि इस अवस्था में प्राणापान की गति ही प्रधान रहती है, जिसके फलस्वरूप स्वप्न-जगत् क्रम से स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जब इन मनोराज्य आदि स्वप्नावस्थाओं में समस्त वेद्य-वर्ग अस्पष्ट रूप में दीख पड़ता है, अर्थात् जब स्वप्न-जगत् क्रम से प्रतीत नहीं होता, वह स्वप्नावस्था में स्वप्न है। अतः इस अवस्था को 'स्वप्नस्वप्न' कहते हैं। मालिनीविजयतंत्र में तथा तन्त्रालोक में इस अवस्था को 'सुविक्षिप्त' नाम से कहा गया है, क्योंकि इस अवस्था में स्वप्नद्रष्टा को स्वप्न-जगत् किसी नियमित क्रम से दिखाई नहीं देता। जब मनोराज्य आदि स्वप्नावस्थाओं में इस दृश्य-वर्ग के साथ-साथ स्वप्न-द्रष्टा का अपना अस्तित्व भी स्पष्ट रूप में प्रतीत होता है, अर्थात् जब स्वप्न देखते समय स्वप्न-द्रष्टा को पूर्वापर अनुसन्धान रहता है, वह अवस्था 'स्वप्नसुषुप्ति' कहलाती है।

इस अवस्था को ज्ञान की दृष्टि से तन्त्रों में 'संगत' नाम से कहा है, क्योंकि इस अवस्था में स्वप्न-दृश्य पूर्वापर-संगत की प्रतीत होता है। इसी प्रकार जब इस सारे दृश्य-वर्ग के स्वप्नावस्था में दिखाई देने पर भी स्वप्न-द्रष्टा की प्रमिति स्पष्ट बनी रहती है, अर्थात् मनोराज्य आदि स्वप्नावस्थाओं में भी जब स्वप्न-द्रष्टा यह समझने लगता है कि मैं स्वप्न देखता हूं और इसी आशय से उसके मस्तिष्क पर इस स्वप्न जगत् का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, उस अवस्था को तन्त्र-वेत्ता आचार्यों ने 'स्वप्नतुर्य' नाम दिया है। इस अवस्था को 'सुसमाहित' भी कहते हैं, क्योंकि इस अवस्था में स्वप्न-द्रष्टा सुसमाहित बना रहता है। इसी आशय से मालिनीविजयतन्त्र में कहा है—

.... पदस्थं च चतुर्विधम्।
गतागतं सुविक्षिप्तं संगतं सुसमाहितम्।।

इस स्वप्नावस्था के भी लौकिक, योग संबन्धी तथा ज्ञान संबन्धी नाम कहे गये हैं। इस अवस्था का नाम सांसारिक दृष्टि से स्वप्नावस्था है, क्योंकि इस अवस्था में बाह्य जगत् दिखाई न देने पर भी अपने ही विकल्प-मार्ग में ठहरा रहता है। योगियों की दृष्टि से इस अवस्था को 'पदस्थ' कहते हैं। क्योंकि इस दशा में योगी—जब प्राणापान का उत्थान करके स्वरूपपद को प्राप्त करते हैं और उनकी दृष्टि से स्वप्नावस्था स्वात्मपदवी के समीप ही होती है। ज्ञानियों ने इस अवस्था को 'व्याप्ति' नाम से कहा है, क्योंकि इस दशा में ज्ञानी स्वप्न-जगत् के सभी वैकल्पिक हान-आदान रूपी व्यवहार में अपनी सत्ता की ही व्याप्ति का अनुभव प्रत्यक्ष रूप से करता है।

अब सुषुप्ति अवस्था पर विचार कीजिए। उपरोक्त चैत्र-मैत्र आदि वस्तु-वर्ग जिस अवस्था में प्रमाता के स्वरूप में छिपा रहता है, उस अवस्था को सुषुप्ति अवस्था कहते हैं इस अवस्था का लौकिक नाम सुषुप्ति है, क्योंकि इसमें समस्त वस्तु-वर्ग संस्कार के रूप में ही ठहरा

रहता है, बाह्यता में नहीं। योगियों की दृष्टि से इस अवस्था को 'रूपस्थ' कहते हैं, क्योंकि उनका इस दशा में समस्त वस्तु-वर्ग अपने ही रूप में ठहरा हुआ प्रतीत होता है। ज्ञानियों की दृष्टि से इस अवस्था का नाम 'महाव्याप्ति' है, क्योंकि उनको इस अवस्था में भेद-प्रथा का तनिक भी भान नहीं रहता, प्रत्युत वह इस दशा में पहुंचकर उत्कृष्ट स्वरूप-व्याप्ति प्राप्त करते हैं। श्रीपूर्वशास्त्र में कहा है –

रूपस्थं च महाव्याप्तिः सुषुप्तस्यापि तद्द्वयम्।

जाग्रत् तथा स्वप्नावस्था की भांति इस सुषुप्ति अवस्था में भी चार अवस्थायें होती हैं। सुषुप्ति अवस्था की जो जाग्रदवस्था है उसको 'उदित' कहा गया है, क्योंकि इस दशा में सभी वस्तु-वर्ग संस्कार के रूप में उदयशील रहता है।

इस अवस्था की जो स्वप्नावस्था, अर्थात् 'सुषुप्ति-स्वप्न' अवस्था है, उसे तन्त्रों में 'विपुल' कहते हैं, क्योंकि इस दशा में संस्कार के रूप में ठहरा हुआ वस्तु-वर्ग उसी संस्कार की पुष्टि करता है। इस अवस्था की जो सुषुप्ति अर्थात् 'सुषुप्ति-सुषुप्ति' है, उसे तन्त्रों में 'शान्त' नाम से कहा गया है, क्योंकि इस अवस्था में सभी संस्कार एकबारगी शान्त हो जाते हैं। इस दशा की जो तुर्यावस्था अर्थात् 'सुषुप्ति-तुर्य' दशा है, वह तन्त्रों में 'सुप्रसन्न' नाम से कही गई है, क्योंकि इस दशा में योगी पूर्णाहन्ता में प्रवेश करके स्वात्मानन्द में लीन हो जाता है। इसी आशय से मालिनीविजयतन्त्र में कहा है–

'चतुर्धा रूपसंज्ञं तु ज्ञातव्यं योगचिन्तकैः।
उदितं विपुलं शान्तं सुप्रसन्नमथापरम्।।'

यह कहना भी अप्रासंगिक न होगा कि मुख्य रूप में जाग्रदवस्था प्रमेयभूमि है, स्वप्नावस्था प्रमाणदशा है और सुषुप्ति प्रमातृ-भूमि है। कहा भी है–

'मेयभूमिरियं मुख्या जाग्रदाख्यान्यदन्तरा।'

तथा

'मानभूमिरियं मुख्या स्वप्नो ह्यामर्शनात्मकः।'

तथा

'मुख्या मातृदशा सेयं सुषुप्ताख्या निगद्यते।'

तुर्यावस्था का निर्णय करने से पहले प्रमा (प्रमिति) तथा प्रमाता का स्वरूप-भेद दिखलाना युक्ति-संगत प्रतीत होता है। जिस अवस्था में प्रमाता वेद्य की उपाधि से उपरक्त बना रहता है, वह अवस्था प्रमाता की अवस्था है। इसके विपरीत जिस अवस्था में प्रमाता शास्त्रज्ञ की भान्ति वेद्य की उपाधि से अनुपरक्त रहता है, उस अवस्था को प्रमिति कहते हैं। अतः प्रमाता की दशा में भी ऊपर ठहरी हुई जो प्रमिति अवस्था है और जिस अवस्था में समस्त वस्तु-वर्ग अपने संस्कारों को उसी प्रमिति अवस्था में लीन करता है, उस दशा को तुर्यावस्था कहते हैं। उस अवस्था को 'शक्ति-समावेश' भी कहते हैं, क्योंकि इस दशा में योगी चिद्आनन्द आदि शिव-शक्तियों के साथ एकीभाव को प्राप्त करता है। सांसारिक दृष्टि से, योग-दृष्टि से तथा ज्ञान-दृष्टि से तीन नाम हैं। इसकी लौकिक संज्ञा 'तुर्यावस्था' है, क्योंकि लोक-दृष्टि से यह अवस्था देखी नहीं जाती। अतः इसे केवल तुर्य अर्थात् चौथी अवस्था कहते हैं। योगियों ने इस अवस्था का नाम 'रूपातीत' रखा है, क्योंकि इसमें प्रमाता तथा प्रमेय, इन दोनों के स्वरूप अपने-अपने संस्कारों को लेकर ही मिट जाते हैं। ज्ञानियों की दृष्टि से इस दशा का नाम 'प्रचय' है, क्योंकि इस अवस्था में ज्ञानी समस्त वस्तु-समूह को तुर्य-आनन्द-रस से परिपूर्ण देखता है। कहा भी है –

'प्रचयो रूपातीतं च सम्यक्तुर्यमुदाहृतम्।'

चूंकि तुर्यावस्था में दूसरी तुर्यावस्था अनुभव में नहीं आती, इसलिए इस तुर्यावस्था में पूर्वोक्त जाग्रत आदि अवस्थाओं की भांति चार अवस्थायें नहीं होतीं, किन्तु तुर्य-जाग्रत्, तुर्य-स्वप्न और तुर्य सुषुप्ति,

केवल ये ही तीन अवस्थायें होती हैं। तुर्य-जाग्रत् का नाम तन्त्रों में 'मनोन्मन' रखा गया है, क्योंकि इस दशा में मन की मनन-शीलता पूर्ण रूप में मिट जाती है और वह उन्मना-भाव को प्राप्त करता है। 'तुर्य-स्वप्न' का नाम 'अनन्त' है, क्योंकि इस अवस्था में योगी परिमितता को छोड़कर अनन्तता में प्रवेश करता है। तुर्य-सुषुप्ति को 'सर्वार्थ' नाम से कहा गया है, क्योंकि इस अवस्था में सब कुछ शक्ति के रूप में ही ठहरा रहता है। इसी आशय से श्रीतन्त्रालोक में कहा है-

'जाग्रदाद्यास्तु संभाव्यात्तिस्रोऽस्याः प्राग्दशा यतः।
त्रितयानुग्रहात्सेयं तेनोक्ता त्रिकशासने॥
मनोन्मनमनन्तं च सर्वार्थमिति भेदतः॥'

जो अवस्था पूर्ण तथा अनवच्छिन्न आनन्द से भरी रहती है तथा जहां योगाभ्यास करने को कोई प्रयोजन नहीं रहता, वही अवस्था 'तुर्यातीत अवस्था' कही जाती है और उसी को परमधाम भी कहते हैं। चूंकि इस अवस्था में सब ओर से केवल ज्ञान (प्रसंख्यान) ही अनुभव में आता है, अतः इस अवस्था का नाम केवल ज्ञानियों की दृष्टि से ही रखा गया है। ज्ञानियों ने इस अवस्था का नाम 'महाप्रचय' रखा है, क्योंकि इस अवस्था में विश्वोत्तीर्णता में विश्वमयता और विश्वमयता में विश्वोत्तीर्णता का अनुभव होता है। मालिनीविजयतन्त्र में कहा है—

'महाप्रचयमिच्छन्ति तुर्यातीतं विचक्षणाः।'

इस अवस्था में एक बार प्रवेश करके ज्ञानी को फिर से किसी उपासना का आश्रय नहीं लेना पड़ता, क्योंकि यह अवस्था फिर सदा के लिए बनी रहती है। इसलिए ज्ञानी इस अवस्था को 'सततोद्यत' भी कहते हैं।

नोट - तेंतालीस वर्ष पूर्व छपे मालिनी पत्रिका के प्रथम अंक में छपे देवी जी के अनुभवात्मक लेख को उनकी ही संस्मरणात्मक पुस्तिका के आरंभ में उनकी सौवीं जन्म जयन्ती पर आज पुनः मुद्रित करके हम महान गर्व का अनुभव कर रहे है। आशा है साधक वर्ग इस लेख के अनुभव जन्य ज्ञान से लाभान्वित होगा।

पहला खण्ड
संस्मरण



स्वामी श्रीराम

महान् विभूति समस्त विश्व की
श्रीराम रूप में करने उद्धार
सारे जग को देकर तत्क्षण
त्रिक शासन का दुर्गम्य ज्ञान।।

"शैवयोगेश्वरी शारिका"
एक निर्द्वन्द्व आध्यात्मिक-यात्रा

—डॉ० त्रिलोकीनाथ गंजू
स्नातक-शिष्य
श्रीराम शैव (त्रिक) आश्रम
फतेह कदल, श्रीनगर-कश्मीर

प्रस्तुत प्रयास शत-प्रतिशत रूप से क्षेत्रीय-पर्यटन के शोध-अन्वेषण की पद्धति पर आधारित है। शैवयोगेश्वरी शारिका जी के प्रस्तुत एवं आंशिक पावन-जीवन की रूपरेखा के विभिन्न-घटक कश्मीर के सनातन-धर्मी समाज के विभिन्न वर्गों, श्रेणी, शैली तथा लोकाचार के नर-नारियों से भिन्न-भिन्न अवसरों के समय-समय पर वैयक्तिक साक्षात्कारों पर व्यवस्थित रूप से लिया है। विशिष्ट सापेक्षता और विशेषता इन भिन्न अवसरों के साक्षात्कारों की यह है कि सब ही साक्षात्कार ईश्वर-आश्रम के श्रद्धालुओं से ही प्रायः संकलित किए गए हैं जो प्रायः पूर्ववर्ती या पारवर्ती ईश्वर-आश्रम में आकर अपनी श्रद्धा भावना आध्यात्मिक शंका-समाधान रविवासरीय अध्ययन तथा प्रवचन में श्रद्धा संपन्न होकर विशुद्ध मन से आया करते रहे हैं। अतः शैवयोगेश्वरी शारिका जी के अन्तः एवं बाह्य जीवन-बिम्ब श्रीमद्भगवद्गीता के कथन के अनुसार – "लोक संग्रहमेव" अर्थात् जनसाधारण जनार्दन पर ही आधारित है और मैं गीता जी का सञ्जय बनकर संयोजना का एक अदम्य साहस करने जा रहा हूँ जो मैं अपना आभार समझता हूँ क्योंकि श्रीराम (त्रिक)-शैवाश्रम शैवदर्शन के पुनर्जागरण का एकांकी प्रमुख केन्द्र रहा है और स्वामी राजानक लक्ष्मण जी के गुरुदेव स्वामी महाताभ काक महामाहेश्वराचार्य श्रीराम के पट्टशिष्य रहे हैं। स्वामी

राजानक लक्ष्मण जी ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक में इसका उल्लेख भी किया है, अतः हम सब ही एक ही गुरुकुल के शिष्य और प्रशिष्य हैं। इस कारण सत्यतापसी शारिका जी के शुद्ध-बुद्ध एवं पावन संस्मरणों को व्यक्त करना अपने को साभार भी समझता हूँ। कश्मीर स्वयं अनादि काल से ही "सतीसर" इतिहास- भौगोलिकता का एक आंचल रहा है। ईसा पूर्व दो शतक की रचना नीलमत का उल्लेख है :-

कश्मीरा पार्वती तत्र
यैव देवी उमा सैव कश्मीरा

अर्थात् "कश्मीर की धरती स्वतः पार्वती का भौतिक स्वरूप है और जो उमा की स्वरूप है वही कश्मीरा है।" नीलमत के विवरण के आधार पर कश्मीरा" देवीवाचक स्त्रीलिङ्ग है। कश्मीर की समृद्ध-संस्कृति में महर्षि-महिलाओं का आध्यात्मिक-वैभव तथा प्रत्यभिज्ञा का उत्कर्ष भौतिक कालक्रम के इतिहास से अधिक श्रेयस्कर और प्रशस्त रहा है। इन महर्षित्रयी सनातन धर्मी एवं साध्वी-कश्मीरी महिलाओं का उद्भव एवं विकास कश्मीर के इतिहास में भिन्न-भिन्न कालखण्डों में संपन्न हुआ है। शैवयोगेश्वरी लल्द्येद का "अस्तित्व काल" मध्य युग रहा है, अलक्ष्येश्वरी भवानी रोप्द्येद का कालखण्ड सीमान्त का मध्य युग रहा है और शैवयोगेश्वरी शारिका जी का आविर्भाव ठेठ आधुनिक युग है और वह अपने युग में अनादि शिवसूत्र के "चैतन्यमात्मा" और "उद्यमो भैरवः" का युगान्तरवादी शाक्त-शंखनाद का कालजयी मंत्र फूँककर कश्मीर में अवतीर्ण हुई है। चिन्तनीय तथ्य यह है कि अपने विशुद्ध संस्कारों के कारण तीनों ही दिव्य एवं भव्य महिला-महर्षियों ने विशिष्ट एवं व्यवस्थित अपने-अपने तत्त्वदृष्टा गुरुदेवों से अनुष्ठानपूर्वक गुरुदीक्षा ले ली थी। अतः इन तीनों ही प्रज्ञापारमिता महिला-महर्षियों ने आगम शास्त्र के कथन के अनुसार शक्ति-विकास की अवस्था का अनुभव कर लिया था :-

अन्तर्लक्ष्यो बहिर्दृष्टिः
निमेषोन्मेष वर्जितः

"अर्थात् आन्तरिक यथार्थ पर लक्ष्य आरूढ हो चुका है और बाह्य रूप की स्थिति में दृष्टि का उन्मेष (पलक खोलना) और निमेष (पलक बन्द करना) स्थैर्य लेकर अचल बना है।"

महामाहेश्वर श्रीराम भट्टारक के अन्तःसाक्ष्य की मान्यता के अनुसार :–

प्रसूते भावौघं धरति हरति मातृवपुषा

अर्थात् "मातृस्वरूप धारण करके ही अनन्त बाह्य जगत् का सृजन एवं विसर्जन संभव बन पाता है।"

यदि इस विकास के चेतना का उत्तरोत्तर इतिहास के परिदृश्य में तात्त्विक मूल्यांकन किया जाएगा, फलतः यह तथ्य स्वतः स्पष्ट होता है कि इन तीनों ही ज्ञान-उल्काओं ने महिला गौरव को महिमा - मण्डित किया है। ईसा पूर्व की रचना "पञ्चस्तवी" किस उदात्तता से इसका शब्द- चित्र व्यक्त करती है :-

त्वं चेतनासि पुरुषे

(अर्थात् पुरुष समाज के लिए तुम सचेत प्रेरणा हो)

तपस्विनी शारिका जी का ऐहिक अस्तित्व उनके पितृ-श्री स्व० जियालाल सोपोरी और मातृ-श्री राधिका रानी की अच्छिन्न-साधना और निरंतर प्रद्युम्न पीठ चक्रेश्वरी सिद्धपीठ की नैमित्तिक परिक्रमा का प्रत्यक्ष वरदान स्वीकारा जाता है। मातृ-श्री राधिका जी को मंगल-मय प्रसव से बहुत पूर्व ही इस तथ्य का आभास धीरे-धीरे होने लगा था कि कोई दिव्य शक्ति उनकी कोख में पल रही है। मातृ-श्री कश्मीर के चौदह शाक्तपीठों की परिक्रमा के स्वप्नों में विचरण प्रायः किया ही करती थी, पर श्री मुक्तानन्द सन्त का आशीष उन्हें एक मात्र साहस था, जिसके फलस्वरूप मातृ-श्री उत्साहित होकर जी रही थी। अन्ततः अंशभूत

शारिका-बालिका ने जन्म लिया और यह था 29 नवंबर 1913 ई०, तदनुसार मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष द्वितीया शनिवार और प्रसूत काल रात के 4 बजकर 52 मिनट, नवजात कन्या ने तुला लग्न पर जन्म लिया। स्वाभाविक रूप से घर में नवजात शिशु के आने से घर में चहल-पहल का वातावरण छा गया।

तथ्यों को खोजने और अन्वेषण से इन बातों का भी परिचय मिलता है कि सोपोरी परिवार के कुल पुरोहित ने नवजात कन्या की जन्म कुण्डली देखकर इस बात की भविष्य वाणी की थी कि नवजात शारिका के दूसरे घर में नौवें-दसवें और ग्यारहवें घर के स्वामी-ग्रह योगकारक होकर बैठे हैं। जैमिनी ज्योतिष शास्त्र के अनुसार उत्कर्ष पूर्ण परमार्थ योग बनाता है पर वृश्चिक का चंद्रमा इस दिव्य योग को गम्भीर रहस्यात्मक बनाता है अतः साधक अपनी परामर्श अनुभूति को बाहिर नहीं आने देता है अतएव साधक प्रच्छन्न होकर सावधान अवस्था में रहता है। सातवें घर का स्वामी मंगल कर्कट-राशि कर्मस्थान में होने के कारण अखण्ड-ब्रह्मचर्या योग बनाता है। धनु का बृहस्पति ग्यारवें घर को 270^0 अंश से देखता है अतः यहाँ पर सिंह का केतु "ज्ञानगर्भ" योग बनता है जो अन्तःज्ञान को समावेशित करता है। विस्मय तो इस तथ्य का है कि कुल पुरोहित ने जो भी भविष्यवाणी की थी वह शतशः सत्य प्रमाणित हुई।

स्वयंसिद्धा शारिका का शैशव काल भी सामान्य शैशव से भिन्न रहा है। बालिका प्रायः एकान्त और शोरगुल से अलग-थलग के वातावरण को अधिक श्रेयस्कर समझती थी और प्रायः अन्तः मौन रहना वह अपने अस्तित्व का सौभाग्य समझती थी। एक बार कोई सम्बन्धी युवा डाक्टर उनके घर आए और बच्ची के इस व्यवहार को देखकर कुछ-कुछ चौंके क्योंकि नन्हीं-सी छोटी बेटी एकान्त में पद्मासन की मुद्रा में गम्भीर ध्यान में मग्न होकर बैठी थी और

मुखमण्डल का आलोक आकर्षक बना था। इस प्रकार के ज्ञान मुद्राओं का क्रम नित्य नैमित्तिक हो चुका था। यही कारण था माता-पिता ने इस के लिए एकान्त में एक कमरा रखा था जहाँ तापसी बाला अपनी इस प्रकार की साधना किया करती थी।

एक बार बालिका शारिका अचानक मूर्छित हुई और यह अवस्था दो-एक दिन तक बनी रही। डाक्टर परेशान थे क्योंकि कोई गहरी चोट भी नहीं आई थी। एक ओर ऊँचे-बड़े डाक्टर ने जांचा सब ठीक था, बस एक गहरी सुखद नींद थी। डाक्टरी परीक्षा करने के उपरान्त डाक्टर ने परिवार के लोगों को परामर्श दिया कि एकजुट होकर यहाँ पर सस्वर भगवत्भजन की लीलाओं का आयोजन कराओ, बच्ची होश में स्वतः आएगी। मधुर लीलाओं का गायन कुछ समय तक बना रहा और दैवीकृपा के फलस्वरूप बच्ची अपनी गहरी नींद से जागकर सुमधुरता से मुस्काई कि आसपास के लोग चौंके। इस गायन लीला - मण्डली में सराफ कदल के मन्दिर के एक सन्त ने, जिनका नाम ऋषिराम था, कश्मीरी भाषा के वाख-शैली में, इस भावमुद्रा के आश्चर्य को इस प्रकार गुनगुनाया :-

शं करिथ शंकायि दूऱ् गलिथ,
ओस सोरुँय ध्रेश काल गॉलमूँत।
ग्यान प्रंवुँ च़ोपॉर्य लहर मॉरिथ,
दिवान ज़न भास केंह छुनुँ मशिरित।।

अर्थात् "स्वयंसिद्धा शारिका ने समस्त शंकाओं को स्वतः काट डाला है, दिशा और काल अब तो प्रशमित अपने में हो चुके हैं। अब केवल अप्रतिहत-ज्ञान का प्रवाह स्पन्दित हो रहा है और इस तथ्य का आभास दे रहा है कि शिवत्व किञ्चित् भी विस्मृत नहीं हुआ है। अतः आकस्मिक यह प्रत्यभिज्ञा कह रही है कि गत, आगत और अनागत सब ही सजीव, साकार और स्वानुभव होकर रोम-रोम में रम रहा है।"

स्वयं-सिद्धा के लिए शिक्षा की व्यवस्था तत्कालीन योजना के अनुकूल, जो भी उपलब्ध साधन थे, उन सभी शैक्षनिक-पद्धतियों, प्रणालियों और विधाओं का यथायोग्य प्रयोग हुआ। शारिका जी की मानसिक प्रवृत्ति और अन्तर्ज्ञान की नैसर्गिकता को देखकर स्वयंसिद्धा के लिए संस्कृत-भाषा सीखने के लिए एक विशेष अध्यापक की नियुक्ति हुई, क्योंकि किशोर अवस्था के पदार्पण की अवधि से ही संस्कृत स्तोत्रों के प्रति उनको अपार आनन्द अनुभव हुआ करता था। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को समझकर ही उनके माता-पिता ने संस्कृत अध्यापक की नियुक्ति की और स्वयंसिद्धा शारिका का केन्द्रित-ध्यान संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रति अधिक सक्रिय होकर बना रहा, यहाँ तक कि उन्होंने अपनी ढलती किशोर अवस्था में स्व. विद्लाल जाडू की शैक्षणिक दक्षता में आचार्य पाणिनि के व्याकरण को प्रत्यक्षरूप से पढ़े बिना ही परोक्षरूप से व्याकरण में पारंगत हो चुकी थी और इस विद्वत्ता का उल्लेख, सुश्रीया शारिका जी का स्वयं गुरुदेव स्वामी राजानक प्रायः अध्यापन करते समय किया करते थे। तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि कुमारी शारिका जी ने अपने इस युग में गीता जी के विस्तृत एवं गहन अध्ययन के अतिरिक्त बहुत से गूढ शास्त्रों का भी ध्यानस्थ अध्ययन किया। साधना की दिशा और दशा का अभ्यास समावेश की भूमि का अन्वेषण स्वयं हो रहा था। स्वयंसिद्धा शारिका स्वयं किसी गम्भीर आध्यात्मिक उपलब्धि में व्यस्त थी, उसके लिए वह मार्ग दर्शन का एक शाश्वत आश्रय मन ही मन ढूँढ रही थी। गीता जी के भावात्मक अध्ययन ने उन्हें विशद-रूप से इस दिशा में प्रभावित किया था :-

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

"उद्धार भी अपने से ही हुआ करता है और पतन भी अपने से

ही हुआ करता है, व्यक्ति स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु भी है।"

यह वह समय था जब कि सुश्रीया के माता-पिता एक योग्य वर के खोज में व्यस्त थे और लगभग भावी वर का चयन भी संपन्न हो चुका था और वाक्‌दान अन्तिम मुहूर्त का निर्णय तय भी हुआ था और इन सभी तथ्यों से तटस्थ सुश्रीया शारिका म० मा० अभिनवगुप्त की अनासक्त सुमधुर वाणी में जैसे स्वर देकर गा रही थी :–

संसारोऽस्ति न तत्त्वतः-
तनुभृतां बन्धस्य वार्तैव का।

"वास्तव रूप में मानव के लिए संसार है ही नहीं, फिर बन्धन होने का प्रश्न ही नहीं उपजता है।"

यह समय था कश्मीर के चिरंतन शैव दर्शन के ऐतिहासिक उत्थान का, विकास का तथा प्रचार और प्रसार का। महामाहेश्वर श्रीराम ने अपनी अथक एवं निस्स्वार्थ साधना और अतुल्य अध्यापन के माध्यम से भारत भर में एक स्वर्ण युग का शुभारम्भ किया जो 1884 ई० से लेकर 1915 ई० पर्यन्त बना रहा। म० मा० श्रीराम की छत्रछाया में हज़ारों की संख्या के शिष्यों ने कश्मीर के शैवदर्शन के आगम शास्त्र, स्पन्द शास्त्र, कौल शास्त्र, क्रम शास्त्र और विश्वप्रसिद्ध प्रत्यभिज्ञा शास्त्र ज्ञान रूपी समुद्र का गहन मंथन किया। म० मा० श्रीराम के तीन समर्पित शिष्य जिन्होने आजीवन श्री राम (त्रिक) शैव-आश्रम, फतेहकदल, श्रीनगर में स्थायी रूप से शैवदर्शन के पठन-पाठन का यथास्थित क्रम बना के रखा, उन में स्वनाम धन्य स्वामी महताभ काक, जो स्वामी राजानक लक्ष्मण जी के शैव दीक्षागुरु थे, स्वामी गोविन्द कौल, श्रीराम (त्रिक) आश्रम, फतेहकदल, श्रीनगर के शैवदर्शन महान व्याख्याता एवं दीक्षागुरु और समाज सुधारक एवं धर्म-उद्धारक स्वामी विद्याधर जी, जिन्होंने कर्णनगर में नवीन शैवाश्रम का निर्माण करके शैवागम

का अध्यापन प्रचुरता से किया।

म०मा० स्वामी राम के निर्वाण के उपरान्त स्वामी महताभ काक ने आश्रम का कार्यभार संभाला और उनकी दिव्य छत्रछाया में गुरुदेव स्वामी लक्ष्मण जी को शैवी-दीक्षा का स्नातक एवं आध्यात्मिक मंत्रपूत अभिषेक से संपन्न किया। गुरुदेव स्वामी राजानक लक्ष्मण जी ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक में इसका उल्लेख भी किया है, उनके गुरु स्वामी महताभ काक हैं और उनके परमगुरु महामाहेश्वर श्रीराम हैं। श्रीराम (त्रिक) शैव आश्रम की समृद्ध मान्यता यह है कि राजानक लक्ष्मण जी अभी अपना सातवां वर्ष अपनी-आयु के पार कर चुके था कि महामाहेश्वर स्वामी श्रीराम ने अपनी स्वतंत्र इच्छा से पञ्चांग में मुहूर्त देखकर सौम्य-बालक राजानक लक्ष्मण जी को शैवी दीक्षा से मन्त्रपूत किया।

इस ओर सुश्रीया शारिका जी अपनी आयु के उत्तर-किशोर की अवस्था में पदार्पण कर चुकी थी और योगाभ्यास एवं गहन-अध्ययन और स्वाध्याय-मनन की अनुभूति के फलस्वरूप स्वस्थरूप से परिपक्व भी हो चुकी थी और जिज्ञासापूर्ण खोज थी-अध्यात्म-मार्गदर्शक गुरुदेव के आगमन की। सुश्रीया शारिका जी के प्राक्तन-कर्मों का उदय हो चुका था, चक्रेश्वरी शारिका का स्वच्छन्द-वरदान सुश्रीया शारिका जी प्रति अनुकम्पित हो चुका था। स्वयं गुरुदेव राजानक लक्ष्मण जी ने अनन्य-साध्वी शारिका को आहूत किया और रैण-आवास के मरबल (फतेह कदल आँचल) के स्थान पर सुश्रीया शारिका जी के व्यवस्थित अध्यापन का शुभारम्भ हुआ। सुश्रीया अपने भाई मोहन लाल जी के साथ आती थी और अध्ययन एवं अभ्यास करने के उपरान्त महाराज गंज - सराफ कदल लौट आया करती थी। अध्ययन और अध्यापन की यह परंपरा तब तक बनी रही जब तक शैव-दर्शन के सब दार्शनिक-कक्षाओं का पठन-पाठन एवं मनन-चिन्तन समाप्त नहीं हुआ। इस प्रकार से सुश्रीया शारिका शैवयोगेश्वरी होकर एक

अनन्य-चैतन्याभास में अनुप्रवेश कर इस अवस्था में अपने को पाकर निश्चय ही स्वयं सिद्धा शारिका जी ने शैव-वाङ्मय के इस श्लोक को अवश्य ही मनन एवं स्तवन अपने गुरुदेव राजानक जी के प्रति श्रद्धानत होकर सस्वर गाया होगा :-

प्रसीद भगवन ! येन त्वत्पदे पतितं सदा।
मनो मे तत्तदास्वाद्यक्षीबेदिव गलेदिव।।

"हे गुरुदेव ! आप सदा मार्ग दर्शक होकर बने रहिए जिसके फलस्वरूप आपके चरणों पर नतमस्तक मेरा यह मन उन सब ही अलौकिक अवस्थाओं को अनुभव करके आपके अभिन्न एवं अपार आनन्द में लय-विलय होकर चैतन्य रूप हो जाए।"

पारदर्शी गुरुदेव ने आत्म समर्पिता सुश्रीया शारिका जी की श्रद्धानत नमन भावना की विकलता को परखकर सहज एवं स्वाभाविक वैखरी के उत्साहित मन्त्रोच्चार से दीक्षित शारिका जी को निश्चय ही वरदान का आशीष निम्न-सांकेतिक शैली में मानसिक संप्रेषण किया होगा :—

स्त्रियः सर्वेषु वर्गेषु योगिन्यः सन्ति न संशयः

अर्थात् "निस्सन्देह शिव की अनन्य एवं अभिन्न शक्ति ही जात-पात के बन्धनों से उल्लंघित होकर और वर्ण व्यवस्था के वर्गवाद को निरस्त करके स्वयं ही योगिनी के रूप में अवस्थित है। (ई० प्र० वि० 2.276, ज्ञानाधिकार में स्पष्ट कहा है - "नात्र जात्याद्यपेक्षा काचित्" अर्थात् शैव धर्म में जातपात की अपेक्षा नगण्य है।)

विस्मय तो इस तथ्य का है कि यह आकस्मिक संयोग एवं साक्षात्कार ही स्वयंसिद्धा शारिका के लिए मंत्र-अभिषेक की दीक्षा का आरम्भ और युगपत् दीक्षान्त समारोह बनकर प्रभावित बन आया। वातूलनाथसूत्र ग्रन्थ में इस अकस्मात्-वेला को ही महासाहस वृत्ति वरदान कहते हैं और महार्घ-गीता जी में इस की परिभाषा इस प्रकार से व्यक्त हुई है :—

बहूनां जन्मनाभन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते

अर्थात् जन्मजन्मों के विशुद्ध एवं सञ्चित कर्मों के पृष्ठ धीरे-धीरे खुलने को आ चुके थे और प्रज्ञा-संपन्न शारिका जी को तत्त्वबोध के आरोहन का श्रीगणेश हो चुका था अतः विविध शैवागम शास्त्रों और ज्ञानविज्ञान का स्वतः स्वात्म अध्ययन तथा गुरुदेव स्वामी राजानक द्वारा अध्यापन का अच्छिन्न-क्रम निरन्तर-रूप से बना रहा, इसकी परिपाटी कभी कक्षागत अवस्था में संपन्न हुआ करती थी और बहुधा वैयक्तिक पाठन का क्रम भी आयोजित हुआ करता था। योगेश्वरी शारिका जी योगवासिष्ठ के कथन के अनुसार :—

अजर अमरवत्प्राज्ञो विद्यांसदैव चिन्तयेत्

अर्थात् "प्रबुद्ध व्यक्ति को यह निश्चित करना है कि उसको कभी भी न तो बुढ़ापा देखना है और न कभी मरना ही है और इस विमर्श के उपरान्त विविध विद्याओं का अध्ययन करना उसका लक्ष्य होना चाहिए।"

गुरुदेव स्वामी राजानक के विशुद्ध परीक्षण एवं निरीक्षण में ज्ञान प्रसूता शारिका जी ने कश्मीर के शैव-वाङ्मय का प्रपाठन एक कुशाग्र जिज्ञासु के समान किया। उनके ज्ञानार्जन का विशिष्ट लक्ष्य था :—

सा विद्या या विमुक्तये

(वह परमार्थ विद्या जो मुक्ति का द्वार खोले)

कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास में सात-आठ सौ वर्ष, आज के पूर्व, इसी प्रकार की हार्दिक अभिलाषा मान्या ललद्यद ने परमशिव से की थी।

कति बोज़ि दैय म्यॉन मॅति दी तार

"कहीं मेरे शिव मेरी हार्दिक अभिलाषा सुन लेते, जिसके फलस्वरूप मेरी नैया उस पार पहुँच पाकर किनारे लगती।"

योगेश्वरी शारिका जी की गुरु भक्ति अटल, अचल एवं एक कालजयी

होकर अपने निर्वाण तक बनी रही। यद्यपि सामयिक परिवेश में विक्षुब्धता के परिवर्तनों का उभर आना बना रहा पर स्वयंसिद्धा शारिका जी श्रीगीता जी की परिभाषा में अनासक्त कर्म करती अटल हिमालय होकर बनी रही : –

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

अर्थात् "जो मनुष्य भी कामनाओं को छोड़कर तथा ममता, अहंकार और कामना के रहित आचरण करता है वही साधक शान्ति को प्राप्त करता है।"

गुरुदेव स्वामी राजानक शैव योगेश्वरी सुश्रीया शारिका की शालीन एवं अनन्य एकाग्रता, सौम्यता, तटस्थता, तल्लीनता की प्रकृति से अवगत थे और अध्यापन की सुदीर्घ अवधि में भी गुरुदेव स्वामी राजानक जी ने सुश्रीया शारिका की अटल गुरुभक्ति को देखा और अनुभव भी किया था। इसका साक्ष्य इस व्यवहार से भी प्रामाणिक ठहरता है कि जब शैवयोगेश्वरी शारिका जी का निर्वाण जम्मू प्रान्त में हुआ, उस समय गुरुदेव स्वामी राजानक श्रीनगर में थे, इनके जम्मू पहुँचने तक भावी अन्त्येष्टि का कार्यक्रम उनके आने तक रुका रहा। स्वामी जी के आने के उपरान्त उनके आदेश के अनुसार अन्त्येष्टि से लेकर पावन हरिद्वार के गंगातीर्थ पर अस्थि विसर्जन तक गुरुदेव स्वामी जी के देखरेख ही सब संपन्न हुआ। गुरुदेव स्वामी जी ने स्वयं एक अनासक्त कर्मयोगी के अनुरूप लोकोत्तर-भावना एवं अतुल्य शिष्य-वात्सल्य से सब ही संपन्न किया। शत-सहस्रधारा गंगा के तट पर निर्वाण प्राप्त शारिका जी के अस्थिविसर्जन के समय शैवाद्वैत की भावना से शिवस्वरूप स्वामी जी ने कालिका-चक्र की निम्नपंक्ति को गंगा जी की छपछपाती लहरों के नादसौंदर्य में अवश्य दोहराया होगा :–

छित्वा द्वैत महामोहं योगी योगफलं लभेद्

अर्थात् "द्वैत के महामोह को स्वतः अपने आत्म-बल से विलय करके ही योगी को योग की प्राप्ति होती है अर्थात् अपने चैतन्य का साक्षात्कार होता है।"

प्रशान्त-स्वभाव शारिका अवश्य ही जन्मतः परमार्थ-प्राप्ति की यात्रा पाटने में भाग्यशील रही है, वस्तुतः व्यवस्था के अनुसार शिष्य अपनी ज्ञान-जिज्ञासा की पूर्णता के लिए गुरुदेव का अन्वेषण करता है, पर अहोभाग्या शारिका जी को गुरुदेव स्वामी राजानक जी ने स्वयं आहूत किया और प्रथम साक्षात्कार में ही अपनी दिव्य-दृष्टि से जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को जगाकर चिन्तनहीन साध्वी शारिका जी को –

अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधितः

"मंत्र का अभिषेक करके" अद्भुत समावेश की अवस्था पर पहुँचाया और शारिका जी में चैतन्य का अपार आनन्द रोम-रोम में रम चुका।

सुश्रीया शारिका जी के शैवशास्त्रों के अध्ययन एवं अध्यापन की शैक्षणिक व्यवस्था की पद्धति अधिकांश रूप से सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अर्थात् अध्यापन-परक तथा अभ्यास-परक होकर शंकाशून्य दिशा की ओर प्रवृद्ध होकर अग्रसर होकर रही है। इस प्रकार के अध्ययन एवं अध्यापन की व्यवस्था गुरुदेव स्वामी राजानक के पैतृक- मरबल (फतेहकदल) आवास से लेकर ईशबर (ईश्वरभट्टारिका) के पर्वत की पूर्वोत्तर तलहटी के टीले पर के दो नये आवासों में 1934 ई० से लेकर 1961 ई० पर्यन्त व्यस्थित रूप से बनी रही। नक्षत्र संख्या अश्विनी नक्षत्र से लेकर रेवती नक्षत्र तक 27 बनती और इतने ही वर्ष पर्यन्त प्रबुद्धा शारिका जी ने शैव-वाङ्मय का अध्ययन एवं अभ्यास किया। यह 27 वर्षों का लम्बा समय एक दैवी वरदान था। आगे जाकर इस व्यवस्था का स्वर्णकाल विगत काल की गरिमा लेकर कभी भी लौटकर नहीं आ पाया।

1962 ई० में ईश्वर-आश्रम में आकर आवास वैयक्तिकता संभव नहीं हो पाई क्योंकि गुरुदेव स्वामी जी राजानक विदेशी शिष्य मण्डली के अध्यापन और प्रवचनों के कारण अधिक सक्रिय होने के फलस्वरूप बहुत व्यस्त रहा करते थे। रविवासरीय जन-भीड़ के कारण आश्रम की स्वतंत्रता में बाधा का आना स्वाभाविक हुआ और अधिकांश लोग अध्ययन और आध्यात्मिक उद्देश्य की उपेक्षा करके अपने निहित स्वार्थ और अपने भौतिक श्रेय को लक्ष्य करके अपनी उपस्थिति जुटाने में व्यस्त रहा करते थे।

स्वयं सिद्धा अपनी अनन्य साधना में लीन होने के कारण अधिकांश समय अपनी कुटीर में "शिवस्तोत्रावली" के भाव-समाधि का समाधान करने में अन्तर्लीन रहा करती थी पर गुरुदेव के प्रति उनका मानसिक सहर्ष-आवाहन उनके श्वास-उश्वास में अच्छिन्न और अनुस्यूत होकर रहा करता था :-

गृहाण मत्तः श्रीकण्ठ भावपूजामकृत्रिमाम्।

"हे श्रीकण्ठ ! मेरी निच्छल भाव पूजा अकृत्रिम स्वभाव से ग्रहण कीजिए :-

जगदानन्द के अपार हर्ष में मग्न पुण्यसंपन्ना शारिका म० मा० उत्पल देव के समाधि-परक कई-एक श्लोकों के अन्तरतम में उतरकर शब्दातीत अवस्था में आत्मविभोर हो जाती थी और कभी-कभी इन आध्यात्मिक श्लोकों के सादृश्य के आधार पर तपस्या पूत शारिका जी अपने समावेश के आंशिक तारतम्य के अनुमान में लाकर इसके ताने बाने से अपनी चेतना का स्वात्म आस्वादन करती :-

परि समाप्तमिवोग्रमिदं जगद
विगलितो विरलो मनसो मलः।
तदपि नास्ति भवत्पुर गोपुरा-
र्गलकवाटविघट्टनमण्वपि।।

अर्थात् "हे स्वात्म शंकर! यह भेद प्रथा की उग्रता का बना हुआ जगत अपनी भेद-परकता से ओझल होता जा रहा है, अविद्या एवं अज्ञान का मल विलय की प्रतीक्षा करके समाप्त हो चुका है, इतना सब कुछ होने के उपरान्त भी आपके गोपुर की सांकल में झकड़ा द्वार किंचित् भी खुलने को नहीं आता है।"

स्वयंसिद्धा शारिका जी शैवयोगेश्वरी लल्द्येद के ही अनुरूप वस्तु-निष्ट जगत से उदासीन है, वह भी अपने अनन्य आनन्द में अपनी नैया को उस पार पहुँचाने की प्रतीक्षा कर रही है , सन्त लल्द्येद रूपक बांधकर तर्कातीत अभिलाषा करती है :-

कति बोज़ि दय म्योन
म्यें दियि ....तार।

अर्थात् "कदाचित् ऐसा संभव हो पाता कि मेरे अनन्य प्रभु मेरी यह पुकार पाते।"

स्वयंसिद्धा शारिका ने ज्ञानाग्नि से प्रज्वलित उत्पलदेव के व्युत्थान-विलाप के माध्यम से इस अभिलाषा को स्वात्मसात् करके गुनगुनाया अवश्य होगा :-

तदपि नास्ति भवत्पुरगोपुरार्गलकवाट विघट्टनमण्वपि

अर्थात् "तथापि आपके गोपुर की सांकल में झकड़ा द्वार किंचित् भी खुलने का नाम नहीं लेता है। परमार्थ के प्रवाहशील अतुल्य क्षणों में अवश्य अलक्ष्येश्वरी रोंपुद्येद ने इस भाव-विस्मय को लोकोत्तर अभिव्यक्ति देकर मुखराया है :-

ति करिथ प्रारान बर मुंच़रेह

अर्थात् "तथापि चिरप्रतीक्षा से, मैं कब से इस अभिलाषा में आशा लगा के बैठी हूँ कि संभवतः कभी न कहीं द्वार खुलने को आ ही जाएगा (अवश्य आएगा)।

इस तथ्य का साभिप्राय विवरण प्रथमतः ही कर आए हैं कि ईसा

के सातवें दशक, अर्थात् 1970 ई० के उपरान्त के उत्तरोत्तर की काल अवधि में आश्रम की जन-भीड़ में बढ़ोत्तरी निरन्तर होती ही रही, जिसके फलस्वरूप आश्रम की नैमित्तिक तटस्थता में एक अवरोध-सा आ चुका था, स्पष्ट है, आनेवाले भक्तजन समय-अवसर और परिस्थिति का अनुमान किये बिना, अपनी सुविधा से आकर आश्रम की नैसर्गिक गति-विधि में निस्सन्देह, एक विषमता उपस्थित करते थे। इन विषम परिस्थितियों के फलस्वरूप आश्रम के अनुशासन में अस्तव्यस्तता आचुकी थी। इन भव बाधाओं के कारण योगेश्वरी शारिका जी अपने ध्यान में मग्न एकान्त का सेवन ही अधिक श्रेयस्कर समझ चुकी थी। ध्यानस्थ श्री शारिकाजी इस अवधि में भावोपहार के रचनाकार श्री चक्रपाणिनाथ के निम्न-उद्धृत श्लोक को गुरुदेव स्वामी राजानक तक पहुँचाना अपने सनम्र शिष्यत्व के लिए क्षमा की अनुकंपा चाहती थी :-

अतिभक्ति रसावेश विविशा विश्वतो मुख।
त्वत्प्रेरिता यतो नाथ नापराधोऽस्ति मे क्वचित्॥

"हे विश्वव्यापी गुरुदेव ! आपके भक्ति रस के अत्याधिक उद्रेक की अखण्डता के फलस्वरूप समावेश की अवस्था में विलीन हो चुकी हूँ, इस कारण यदि आपकी देखरेख करने में कुछ भी चूक हुई हो, प्रभु ! इस में किंचित् भी मेरा अपराध नहीं है ना ही किसी प्रकार की अवहेलना ही है।"

ईश्वर-आश्रम के विश्लेषित तथ्यों से इस बात का स्पष्टीकरण होता है कि जब भी स्वयंसिद्धा इस प्रकार अपने अन्तरतम की प्रेषणीयता के माध्यम से अपने आराध्य गुरुदेव को सनम्र निवेदन किया करती थी तो प्रायः आशुतोष स्वामी जी राजानक अपनी आध्यात्मिक भुवन-आकर्षक स्मृति से अनासक्त शारिका जी को अपने अक्षय वरदानों से वर्षित किया करते ही रहते थे। इस प्रकार के अन्तर्यामी संप्रेषण बहुधा ज्ञान-प्रवर्द्धन के लिए भी हुआ करते थे जिस की प्रामाणिकता प्रायः स्वयंसिद्धा शारिका के आस-पास के आत्मीय जन भी किया ही करते थे।

ईस्वी संवत् के सातवें दशक के प्रारम्भ से ही ईश्वर-आश्रम के विकास, उत्थान, प्रचार तथा शैव दर्शन के आध्यात्मिक प्रवचन के अतिरिक्त कक्षापरक अध्यापन एवं अध्ययन का युग ईस्वी-नब्बे तक शैव दर्शन के सांस्कृतिक एवं चिर अपेक्षित महान् दायित्व के निर्वाहण के लिए कटिबद्ध होकर बना रहा। इसी प्रकार की व्यवस्था से मध्यस्थ श्री नगर में श्रीराम (त्रिक) आश्रम भी कक्षापरक अध्ययन का अपेक्षित योगदान प्रदान करने में कटिबद्ध होकर बना रहा।

स्वयंसिद्धा शारिका के ऐहिक साधना की काल-अवधि में कुछेक महान् सन्तों से उनका सौम्य साक्षात्कार कश्मीर में बना रहा। जिन्होंने ध्यान-संपन्ना शारिका की ज्ञान-प्रतिभा की स्वरूपसत्ता को सन्मान देकर आत्मीयता से उनसे सभ्भाषण भी किया। इन में सन्त श्री मेहर बाबा का साक्षात्कार स्वयं में एक उल्लेखनीय घटक है उनसे कैसे सान्निध्य बन पाया, निश्चय ही स्वयं में एक आश्चर्य है। विस्मय ही इस तथ्य का है कि स्वयंसिद्धा शारिका जी के स्वागत के लिए सन्त श्री मेहर बाबा स्वयं उनका हाथ पकड़कर अपने आवास के कमरे तक ले आकर उन्हें आसन पर बिठाया। लम्बे समय तक मौन होकर बैठे रहे और विदा होते समय सन्त श्री मेहर बाबा केवल इतना बोले "प्रशान्त-सागर की लहरें शब्दातीत होकर तलछटी खोज आए हैं।"

यथार्थ में यह युग ईश्वर-आश्रम का बड़ा ही व्यस्त सक्रियता का युग रहा है। भारत की प्रधानमंत्री स्व० इन्दिरा जी को जब भी समय मिलता अवश्य ईश्वर-आश्रम की श्रद्धानत परिक्रमा किया करती थी। पहली बार स्वयंसिद्धा शारिका जी को देखकर श्रीमती इन्दिरा जी देखती ही रही। श्री मक्खन लाल फोतेदार उनके साथ थे। भाव-मुग्ध होकर श्रीमती इन्दिरा जी श्री फोतेदार से अभिमुख होकर बोली—"शारिका जी के रूप में मुझे स्वयंसिद्धा और गुरुस्वरूपा अपनी आनन्दमयी माँ का दिव्य दर्शन हो रहा है, मैं कितनी भाग्य शीला हूँ।"

श्रीमती इन्दिरा गान्धी के इस प्रकार के इस सादृश्य समानता का

अर्थात् सिद्धीश्वरी आनन्दमयी-माँ और स्वयंसिद्धा शारिका जी के आकार प्रकार में निश्चयेन एक असाधारण आकृति समानता थी। अतः श्रीमती इन्दिरा गान्धी जी का विस्मय किञ्चित् भी अन्यथा नहीं था।

ईश्वर-आश्रम की यह समय अवधि निस्सन्देह ज्ञान विज्ञान के प्रवचन की दिशा और दशा में परमार्थ एवं सौभाग्य संपन्न रहा आया है। इस बात की उपेक्षा को तटस्थ नहीं कर सकते हैं कि कई एक अवांछित समस्याएँ भी उभरकर उठ आईं पर पञ्चस्तवी के आशीष के फलस्वरूप –

लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षाणि

के मन्त्रोच्चार से इन उपस्थित भव-बाधाओं का प्रशमन भी स्वतः होता रहा।

मुमुक्षु सन्तों का साक्षात्कार स्वयंसिद्धा शारिका जी के जन्म-कुण्डली की एक अक्षय-पूँजी जन्मतः संलग्न होकर एवं आबद्ध हो कर रही आई है, इसकी उपेक्षा कदापि संभव नहीं हो सकती है। उनकी जन्म-कुण्डली के नौवें, दसवें और ग्यारहवें स्थानों के स्वामी उनके दूसरे स्थान में बैठे हैं। अतः इस योग की प्रबलता के फलस्वरूप उच्चकोटि के सन्तों को स्वतः स्वयंसिद्धा शारिका जी के पास आकृष्ट होकर आना अवश्य इन महान विभूतियों की अपनी नियति रही है और अपनी आध्यात्मिक तीर्थयात्रा तथा अपने आत्मा के क्षोभ का समाधान है क्योंकि स्पन्दशास्त्र का कहना है : -

यदाक्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात्परमं पदम्

(जब ही क्षोभका प्रशमन होगा तब ही अपने निर्बाध-स्वातंत्र्य का आत्मबोध संभव है)

इसी परिपाटी और अनुक्रम से स्वयंसिद्धा शारिका जी को पड़ोस की कमला जी ने उन्हें सूचित किया कि उनके यहाँ स्वामी जी पूज्यपाद मुक्तानन्द सत्कर्मों के फलस्वरूप पधारे हैं। यह एक चमत्कार था कि

इसी अवधि में स्वयंसिद्धा शारिका जी ने स्वामी मुक्तानन्द की एक आध्यात्मिक रचना "चित्-शक्ति विलास" का गम्भीर अध्ययन कर लिया था। इस कारण दर्शन की उत्सुकता अधिक सक्रिय हो चुकी थी। स्वामी जी राजानक के साथ स्वयंसिद्धा शारिका जी और उनकी छोटी बहिन साध्वी प्रभा जी एक साथ पड़ोस की श्रीमती के घर गए। स्वामी जी मुक्तानन्द ने खड़े होकर स्वामी जी राजानक को मानसिक पाद्य एवं अर्घ्य को स्वागत समर्पण करके यथायोग्य अभिवादन किया और आसन ग्रहण करने का भाव विभोर संकेत दिया, पर स्वामी जी मुक्तानन्द अपलक स्वयंसिद्धा शारिका जी को देर तक देखते रहे और अनायास उनके मुख से वैखरी के नाद-सौन्दर्य की निर्झरणी झर-झर कर मुखर उठी :-

यथा गौरी तपस्यन्ती-
कश्मीरेषु गुहागता

स्वामी मुक्तानन्द तथा स्वामी लक्ष्मण जुव का यह अनायास मिलन का संयोग एक अद्भुत एवं दिव्य सम्मेलन था, यह मिलन निस्सन्देह दक्षिण भारत के विन्ध्य पर्वत और उत्तर भारत के हिमालय की एक विश्वमौन की अनिर्वचनीय तथा अकथनीय गोष्ठी थी। यह मिलाप दक्षिण-भारत की कृष्णवर्णा कृष्णा-नदी और उत्तर-भारत के सीमान्त की नील रंग में रंगी वितस्ता नदी का एक अभूत-पूर्व संगम-स्थल था। वस्तुतः यथार्थ में यह दक्षिण भारत के विन्ध्य-संस्कृति के वीर-शैवदर्शन और काश्मीर के हिमालय-संस्कृति की शाक्त-शैव-दर्शन का एक अखण्ड चिन्तन और कालातीत मनन था। व्यावहारिकता के बाह्य रूप में स्वामी राजानक लक्ष्मण जी और मुमुक्षु स्वामी मुक्तानन्द का अनौपचारिक एक मिलन था और स्वामी मुक्तानन्द को स्वयंसिद्धा का ऐहिक अस्तित्व ऐसे लगा जैसे कश्मीर के गहन-कन्दरा में गौरी अखण्ड तपस्या में तल्लीन है।

संभवतः यदि अलौकिक एवं दिव्य विभूतियों से संपन्न श्री सत् साई बाबा भारतीय सेनाध्यक्ष की सुरक्षा में कश्मीर श्रीनगर के बादाम

बाग सैनिक छावनी में नहीं होते, वे भी अवश्य स्वयंसिद्धा शारिका जी की जन्म-कुण्डली के ग्रहों के आकर्षण-स्वरूप सुश्रीया शारिका के पास अप्रत्याशित रूप से अवश्य स्वयं ही आते पर सैनिक अङ्कुश का नियन्त्रण कठिन था। स्वयंसिद्धा शारिका की प्रबल इच्छा सत् श्री साई बाबा के दर्शन की थी। गुरुदेव स्वामीराजानक की स्वीकृति मिलने के उपरान्त बादामी बाग सैनिक छावनी जाने का प्रबन्ध स्पष्ट हुआ। वहाँ पहुँचकर स्वयंसिद्धा शारिका जी दर्शन की प्रतीक्षा में बैठी रही। निश्चित समय पर सत् श्री साई बाबा ने दर्शन की परिक्रमा आरम्भ की पर स्वयंसिद्धा जहाँ पर प्रतीक्षा कर रही थी, वहां पर पहुँचकर सत् श्री साई बाबा सहसा रुक गए और अपलक होकर अपनी विशाल आँखों से शारिका जी को देखते ही रहे, इन देखते क्षणों की सीमा में असीमता थी और विस्मय की योग भूमियाँ कौंध की तरह लय-विलय हो रही थीं और सत् श्री साई बाबा आगे बढ़े, लौटती परिक्रमा के समय सत् श्री साई बाबा स्वयंसिद्धा शारिका जी के पास आकर फिर से रुक गए पर अबके लौटते बार उनके मुख पर अनुपम मुस्कान थी और अपलक देखने में विस्मय की योग-भूमिका थी और आत्मीयता का भाव था। स्वयं शारिका जी की आँखों में कालातीत गम्भीरता का बोध लहरा रहा था, बगल में बैठी महिला ने टिप्पणी करते कहा—"बाबा ने आपको पूरा दर्शन दिया।" सौम्य मन से शारिका जी ने उत्तर देते हुए कहा, "हमारी यात्रा एक ही दिशा और दशा की है, हम एक हैं" यह सुनकर बगल की महिला शारिका जी की ओर विस्मय देख-देख देखती रह गई।

स्वनाम-धन्य आचार्य श्री रामेश्वर झा का उल्लेख किए बिना स्वयंसिद्धा शारिका जी के—आध्यात्मिक व्यक्तित्व का अन्तः-बाह्य मूल्याङ्कन संभव नहीं हो सकता है। आचार्य रामेश्वर झा आचार्य पाणिनि के अष्टाध्यायी के मर्मज्ञ विद्वान् थे। न्यायदर्शन एवं सांख्यदर्शन

के गाम्भीर्य पर उनका असाधारण प्रभुत्व था। मैथिल्य शाक्त-ब्राह्मण होने के कारण आगम एवं तंत्रों में निष्णात थे और गुरुदेव स्वामी राजानक-लक्ष्मण जी से शैवी दीक्षा लेकर आद्योपान्त शैवदर्शन विशेषकर ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी और प्रत्यभिज्ञा विवृति का गहन अध्ययन किया। गुरुदेव स्वामी राजानक जी ने स्वयं स्वीकारा है कि "आचार्य रामेश्वर झा को अध्यापन की अवधि में बहुत गहन अध्यवसाय करना पड़ा क्योंकि झा महोदय स्वभाव से सौम्य और प्रतिभा से कुशाग्र थे। प्रस्तुत इस जीवन-वृत्त के लेखक आचार्य रामेश्वर झा के शिष्य भी रहे हैं। उन दिनों झा महोदय शेखबाग मिशन स्कूल के पिछवाड़े मठ में गर्मी के दिनों कश्मीर आकर रहा करते, तब तक उन्हें गुरुदेव स्वामी राजानक जी से संपर्क नहीं था, वस्तुतः स्वामी के परम-शिष्य स्व० दीनानाथ गंजू के माध्यम से आचार्य रामेश्वर झा का ईश्वर-आश्रम का परिचय-संपर्क घनिष्ट बना और गुरुदेव स्वामी राजानक की अनुकंपा से उन्हें मंत्र-स्नातक दीक्षा की अनुकम्पा भी उपलब्ध हुई। आचार्य झा महाशय ने स्वयं अपनी विविध रचनाओं में इस तथ्य का उल्लेख किया है।

आचार्य रामेश्वर झा प्रेक्षण-चौकी के स्वाभाविक एवं सहज धनी रहे हैं। वह गम्भीर श्रद्धा के साथ स्वयंसिद्धा शारिका जी की आध्यात्मिक साधना के उत्तरोत्तर उत्थान के उत्कर्ष का एक असाधारण मनन एवं चिन्तन का अध्ययन बिना आभास अपने अन्तर्तम में किया करते ही रहा करते थे और जब भी उनका साक्षात्कार उन्हें संयोग से स्वयंसिद्धा शारिका जी से हुआ करता था, अवश्य, आचार्य झा महोदय शैव-वाङ्मय के "महार्थ मंजरी" में संकलित उपाय-विंशति ग्रन्थ के निम्नलिखित श्लोक को उद्घोष देकर शारिका जी का अभिवादन किया करते थे :–

स्थूलं स्थूलं परित्यज्य सूक्ष्मं सूक्ष्मं समाश्रयेत्।
पश्चात् सूक्ष्ममपि त्यक्त्वा केवलं चिन्मयो भवेत्॥

अर्थात् "ज्ञानमग्ना शारिका जी अपनी साधना में वस्तुनिष्ठता से

उल्लङ्घित होकर अपनी परमार्थ-यात्रा में अब सूक्ष्म की ओर अग्रसर हो रही है। मुख का गाम्भीर्य तेजस्वी होता जा रहा है और उन्मुक्त आँखें अपलक होकर अनन्त दिव्य-साक्षात्कार में विलीन हो चुकी हैं और पारदर्शी एवं द्वन्द्वातीत स्वयंसिद्धा शारिका केवल चित्स्वरूप की सत्ता में अवस्थित है।"

आचार्य रामेश्वर ने ज्ञान के श्वास एवं उश्वास के सृजन एवं संहार में मग्न सौम्या शारिका जी के अन्तः-बाह्य विमर्श-प्रवाह को अनुभव करके ही 'श्री शारिका देवी चर्चास्तव' संस्कृत रचना का निर्माण किया। उनका यह स्वात्म मनन है, उनकी यह अस्तुति, वस्तुतः वैखरी का अन्तःस्फोट है, क्योंकि सिद्धीश्वरी शारिका स्वयं ऋतम्भरा प्रज्ञा पामिता है, जिसने शैव-वाङ्मय का समुद्र-मन्थन-"साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव" के फलस्वरूप, गुरुदेव स्वामी राजानक लक्ष्मण जी की अनुकम्पा से आत्मसात् करके ही अमृत एवं हलाहल का एक साथ पान किया।

ज्ञानाग्नि की प्रदीप्त ज्वालाओं में सदा मग्न शारिका-अंशभूत शारिका जी—की पुण्यशेष स्मृति की पार्थिव-काया को सूर्यास्त के उपरान्त श्रद्धानत भक्तजनों ने चिता की शय्या पर बिठाया, और उनके सन्मुख उनके गुरुदेव स्वामी राजानक जी स्वयं विद्यमान थे, निश्चय ही स्वयंसिद्धा ने अगोचर वाणी में महामाहेश्वर उत्पल देव के इस अमृत-प्रवाह को युगपत् रूप से प्रवाहित किया होगा।

आत्मा मम भवद्भक्तिसुधापानयुवाऽपिसन्।
लोकयात्रारजोरागात्पलितैरिव धूसरः॥

हे प्रभु ! आपके अनुग्रह के फलस्वरूप यह स्वीकृत तथ्य है कि मेरी आत्मा आप के भक्तिरूपी अमृत के पान करने से सतत् युवा अवस्था अपनाकर ही रहा करता है, तथापि लोक परिवेश की धूल के फलस्वरूप मटमैलपन चढ़ने के कारण ढलता बुढ़ापा सा दीखता है। अन्यथा ऐसा कुछ भी नहीं है।

अन्त्येष्टि की चित्ताग्नि ने स्वयंसिद्धा शारिका जी के ज्ञानाग्नि-सत्ता

को अपनी पावन एवं विशुद्ध ज्वालाओं में सन्मान से समेट लिया और शिवध्वनि के एकादश-रुद्र के डमरु आकाश में एकसाथ बज उठे और उपस्थित जनसमूह उन्मुक्त-कण्ठ से श्रद्धाञ्जलि के फूल अर्पण करने लगे :-

किल यदैव शिव-ध्वनि तावके
कृतपदोस्मि महेश तवेच्छया।
शुभ शतान्युदितानि तदैव मे
किमपरं मृगये भवतः प्रभो।।

हे प्रभु ! निश्चय करके, जब ही मैंने आपकी अनुकंपा से आपके मंगलमय मार्ग पर अनुसरण किया, तब ही मुझे अनन्त कल्याणकारी पारमार्थिक एवं वरद भाग्यों का स्वतः ही उदय हुआ और अब शेष रहा ही क्या, जो मैं आपसे मांगने की इच्छा करूँ। अतः हे आत्मदेव :-

किमिदमारटितं न शृणोषि मे।

अर्थात् "आप मेरी पुकार पर ध्यान क्यों नहीं देते हो।"

स्वयंसिद्धा शारिका जी ने जब अपने चैतन्य-स्वरूप से अपनी ऐहिक पार्थिव काया को चिता के ईन्धन पर लेटा हुआ देखा होगा, उनकी दिव्य आत्मा को आचार्य उत्पल के इस अनुभूति का संस्मरण अवश्य ध्वनित हुआ होगा : –

यत्रेन्धनं द्वैतवनं मृत्युरेव महापशुः।
अलौकिकेन यज्ञेन तेन नित्यं यजामहे।।

नोट - कश्मीर भूमि के एकमात्र "श्रीराम त्रिकआश्रम" के संचालक डा० त्रिलोकीनाथ गंजू कश्मीर के कतिपय इने गिने प्रमुख आचार्यों में से अन्यतम है। इनकी गुरुभक्ति परायणता सराहनीय है। आतंकवाद के झंझावात से ज़रा भी विचलित न होकर आजतक ये निरन्तर रूप से आश्रम की दैनिक अर्चाविधि बिना किसी भय से करते आये हैं। इनकी सद्गुरु निष्ठा और आस्था कश्मीर भूमि के सारे आश्रमों तथा आश्रम संचालकों के लिए एक उदाहरण है। सद्गुरु महाराज इन्हें दीर्घायु और नैरोग्य प्रदान करें। यही हमारी कामना है॥

शैवयोगिनी देवी शारिका जी
के दिव्य व्यक्तित्व की पावन मधुर
भाव-भीनी स्मृतियों की एक झलक

-प्रो० मोहिनी कौल

डी. एल. एफ., गुड़गाँव

यस्य सर्वे समारभ्माः कामसंकल्प-वर्जिताः।
ज्ञानाग्निः-दग्ध कर्माणं तमाहुः पंडित बुधाः।। १८।।

श्रीमद्भगवद्गीता, पंचमोऽध्यायः।

प्रातः स्मरणीया जगद्धात्री देवी स्वरूपिणी बालब्रह्मचारिणी पूजनीया देवी जी के आध्यात्मिक वैभव से परिपूर्ण पावन व्यक्तित्व की विराटता, अद्वितीय, असीम और अतुलनीय है। देवी जी तो प्रकृति का एक अद्भुत चमत्कार थीं। उनका व्यक्तित्व पूर्णतः वैचारिक है, अतः पारमार्थिक दिव्यता से संयुक्त होने के कारण 'ब्रह्मास्वाद सहोदरः' ही कहा जा सकता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में ब्रह्मानन्द स्वरूपिणी देवी जी के अति अलौकिक एवं आत्मानुभूति से संभूत व्यक्तित्व दैवीय आभा से सदैव नित्य-सुन्दर, नित्य-अभिनव एवं नित्य सिद्ध है।

ध्यानमग्ना देवी जी का दिव्य एवं अभूतपूर्व स्वतः अलौकिक चित्र आज भी हमारे हृदयपट पर अंकित है। उनकी समुच्चय विशुद्धात्मा सर्वत्र वातावरण को शान्त और सुखदायक बनाती है। उनके त्याग, वैराग्य, तप, निस्वार्थ-प्रेम और योग-कुशलता से स्वयं स्वामी जी महाराज भी विस्मृत होकर उनकी अन्तर्मुखी-साधना से पुलकित होते थे। देवी जी भी अपने प्रेमपूर्ण भक्तिभाव को स्वामी जी के प्रति अर्पित करके उनकी आध्यात्मिक साधना में सहयोगी के रूप में उनका शक्ति-वर्धन करती रही। ब्रह्मलीन होने तक देवी जी

का दिव्य-स्वरूप स्वामी जी के लिए नित्य प्रेरणा-दायक रहा। यह परस्पर-भाव दोनों महानुभावों की दिव्यात्मा को सदा काम-कांचन, सांसारिक-ताप तथा राग-द्वेष से दूर रखने में समर्थ रहा।

मैं बड़े विश्वास और बिना किसी संकोच से दावा करती हूँ कि देवी जी, ईश्वर-स्वरूप स्वामी जी महाराज की मानसी-इच्छा थी। इन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से इच्छाशक्ति, ज्ञान शक्ति तथा क्रियाशक्ति से ईश्वर-आश्रम की महिमा को समृद्ध किया। परमात्मनिष्ठ ब्रह्मज्ञ स्वामी जी महाराज किन्हीं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी देवी जी के सान्निध्य में अपने को सुरक्षित रखने में सफल रहे।

देवी जी का प्रारब्ध में बड़ा विश्वास था। उनके दृढ़-संकल्प के सामने सभी नमन करते थे। वह अपने आप को सभी प्रकार के प्राकृतिक एवं सांसारिक संकल्पों से असंग रखती थी। अपने जीवन में वे हमेशा अन्तर्मुखी रहकर दुःखाकार वृत्ति को भगवदाकार वृत्ति में बदलकर भगवद्भक्ति तथा योगाभ्यास में लीन रहती थी। मौन साधना उनका नित्य नियम था। अत्यन्त विनीत भाव से सभी के प्रति कृतज्ञ रहती थी। नम्रता, सत्कर्म, परहित, सुसंस्कार एवं सेवा भाव उन्होंने अपने परिवार से अर्जित किया था और इन भावनाओं से वह सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी-जनों में पंक्ति-बद्ध होती है।

विद्या-विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि

श्रीमद्भगवद्गीता

उनमें अहं नहीं, गर्व नहीं अपितु उनका व्यक्तित्व, गरिमा, शालीनता, भद्रता, संकोच तथा लज्जा से सम्पूर्ण था। किसी भी घटना से उद्विग्न न होकर स्व-स्वरूप में मग्न रहती थीं।

हमे अपनी बाल्यावस्था में ही देवी जी के दिव्य-स्वरूप के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अपने सदाचार प्रवृत्ति के माता-पिता, भाई-बन्धुओं से अर्जित तथा अपनी साधु भाव से परिपूर्ण प्रवृत्ति की



खड़ी योगिनी शारिका देवी
देने भक्तों को सम्मान
भावुक चपल नयनों से सारे
करते थे उनका रसपान।



शिष्य पुराने भक्तिभाव से, संग रहे गुरु के पग पग,
मोहनलाल सोपोरी जी यह। देवीजी के थे सहचर,
शक्तिपात से पूत बने थे, स्नेहपात्र बने गुरुवर।।

नानी जी से ग्रहीत साधुता और सत्कर्म से देवी जी का व्यक्तित्व शैशवकाल से ही दैवी गुणों का आगार बना था। स्वामी जी जैसे अनुभवी तत्त्ववेत्ता के प्रति जो उनकी आसक्ति थी वह अनिर्वचनीय है।

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तै भगवानेव भजनीयः।

नारदभक्तिसूत्र,७३

स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाभिर्भात्यनु भावयति मक्तान्।

नारदभक्ति सूत्र,८१

तब उनके जीवन को निखार आया जबकि वह अपने हनुमान जैसे छोटे प्रिय भाई के साथ नित्य ब्राह्मीमुहूर्त्त में शैव शास्त्रों के अध्ययन हेतु अपने आवासस्थान से स्वामी जी के निवास स्थान पर जाती थी। स्वामी जी से मिलना और शैव-शास्त्रों का अध्ययन करना उनके दृढ-संकल्प का ही परिचायक है। तत्वज्ञानी श्री स्वामी जी के सान्निध्य में वह ज्ञान और ब्रह्मानन्द के रस का आस्वादन करती थी। अपने अश्रुसिक्त नेत्रों से वह संसार की विषमताओं को देखती थी लेकिन वाक् चातुर्य के अभाव में वह अपने आपको भी सभी प्रकार के विकृत भावों से दूर रखती थी। संसार के कल्याण हेतु भगवान शंकर ने स्वयं समुद्र-मंथन के समय विषपान किया था और उसी प्रकार से हमारी सिद्ध-योगिनी देवी जी दिशा-भ्रष्ट नर-नारियों को अप्रासंगिक चर्चाओं से दूर रखकर शुद्ध सद्भावना की ओर आकर्षित करने का प्रयास करती थीं। स्पर्धा या ईर्षालु प्रवृत्ति वालों का दिशा निर्देशन करके उन पर कृपा करके क्षमा का पात्र मानती थी। क्योंकि स्पर्धा समानवर्ती से होती है। हंस और कौए की चाल एक जैसी कहाँ हो सकती है।

अपने मधुर भाव तथा सहृदय एवं कोमल नेत्रों से सबको देखती थी लेकिन उनका अन्तर्मन स्थिर, शान्त एवं अन्तर्मुखी रहता था। अपनी ईश्वर प्रदत्त शक्ति से सबके मन को हर लेती थी यही उनका 'परमहंस' का स्वभाव था। वे स्वाभिमानी थी लेकिन सबका सत्कार

करने में किसी तरह चूकती नहीं थी। उनकी इस दिव्य प्रभा से सारे आश्रम का वातावरण अलौकिक हो जाता था। वे स्वयं गुरु भी थी और अपने शिष्य भाव से स्वामी जी के सामने यदा-कदा अपनी विलक्षण बुद्धियोग से ज्ञान की पिपासा को भी पूरी करती थी। उनके मन में सदैव श्री ईश्वर स्वरूप महाराज के लिए :—

'गुण महात्म्यासक्ति'-रूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्या-सक्तिसख्या, सक्तिवात्सल्यासक्तिकान्ता सक्तिआत्मनिवेदना सक्तितन्मया सक्ति-परमविरहासक्ति-एकधा अपि एकादशधा भवति, नारदभक्तिसूत्र का भाव विद्यमान रहता था।

अतः अपने सद्गुरु महाराज के प्रति संपूर्ण समर्पण भाव से इन्होंने बड़े-बड़े मनीषियों, ऋषियों, सिद्धों एवं साधुओं की तरह निर्भय होकर 'सन्त सम्राज्ञी' का स्थान बीसवीं शताब्दी के सन्तों में प्राप्त किया।

परित्याग देवी जी के व्यक्तित्व की एक अपूर्व विशेषता है। इस लीलामय जगत की कृत्रिमता से अलग रहकर देवी जी सिद्धपीठ ज्योति-स्वरूप आश्रम की जीवन्त शिखा थी। उदार हृदय से सभी से सत् व्यवहार, बोलचाल और यथायोग्य एवं उचित भद्रभाव से मिलना एवं मृदुल-हास्य से सत् परामर्श देना उनकी गुणवत्ता ही थी। दुर्व्यवहार के लिए उनके हृदय में कोई स्थान नहीं था। सभी उनके वत्स थे। स्वयं की पवित्रता, सरलता, धैर्य और निर्भकीता के कारण उनको दासता और पशुता से तनिक लगाव नही था। अतः चापलूसों, चाटुकारों और चगुलखोरें को वे अपने बुद्धियोग से बहुत ही दूर रखती थी।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

श्रीमद्भगवद्गीता, २.६१

उनका व्यक्तित्व असाधारण सुसंस्कृत संस्कारों से ओतप्रोत था इसी कारण बाल्यावस्था से ही वे अंश-अंशी भाव से अन्तर्मुखी रहती

थी। निशिदिन उनका अन्तर्मन दिव्यानुभूति मे संलग्र होने के कारण भाव समाधि में व्यस्त रहता था। बाह्यानुभूति से वे निरन्तर दूर थीं।

स्वामी जी महाराज तथा देवी जी के दो पवित्र भवन घाटी की पूर्व दिशा की ओर दो पवित्र शृंखला (हरमुख और महादेव) के दामन में स्थित थे और दक्षिण दिशा की ओर से पवित्र अमरनाथ पर्वत पर स्थित 'तारसर' झील से हारवन की पहाड़ी के रास्ते पीने का स्वच्छ जल ईश्वर-आश्रम में प्रवेश करता था। हमने अपने बाल्यकाल में देखा कि किस तरह से ऊपर की पर्वत शृंखला के रास्ते नीचे दामन में छोटे-छोटे नाले और नदियाँ बहती थीं। पूरा वातावरण तपोवन का था और दोनों महान विभूतियों की अनथक साधना और अवगलित तपों से ईश्वर-आश्रम की यह स्थली 'तपोभूमि' बन गई और सिद्ध-पीठ कहलाई। यह पुण्यभूमि इतनी सशक्त और आकर्षक बनी कि विभिन्न देश-विदेश से आए हुए दर्शकों और पर्यटकों के लिए विशेष साधना स्थल बन गया। यह ईश्वर भूमि और शक्ति-स्थल के रूप में उभर कर प्रकट हुआ था।

दोनों महानुभावों ने समस्त जीवन के सुखों और समृद्धियों को तिलाँजली देकर निरन्तर अपने निर्मल अन्तराल से इस भूमि को अपनी तपस्या से सींचा है।

देवी जी बाल्यभाव से ही विशुद्ध श्रद्धा तथा असीम भक्ति-भाव से सब कुछ असीम के प्रति अर्पण कर अपनी साधना और गुरु-भाव में लगी रहीं और उनका व्यक्तित्व किशोरावस्था में ही उच्चतर समाधि को प्राप्त कर चुका था।

बहुमुखी आयामों से परिपूर्ण देवी जी का दिव्य-व्यक्तित्व विविधता, विशिष्टता तथा विचित्रता का प्रतीक है। वे गृहस्थ से दूर, लेकिन निकटतम बन्धुओं की कुशलता की तत्परता उनमें रहती था, वैशिष्ट्रय उनमें यह था कि सबके साथ प्रेम का व्यवहार और सत्कार

करना और वैचित्र्य इस बात का अपने हनुमान जैसे भ्राता के प्रति ममता और निकटता का भाव। देवी स्वरूपा सुश्री शारिका जी सन्त साध्वी, सिद्धयोगिनी थी। ब्रह्मवादिनी, शैवयोगिन, एक कुशल साधक, पथप्रदर्शक, श्रेय और प्रेम से परिपूर्ण थीं। आनन्दमयी आभा, संवेदन शीलता ज्योति, स्वरूप तथा निष्ठा भक्ति से दसों दिशाओं को सुशोभित करने वाली देवी जी के प्रति अन्तर्मन से शतशत बार-बार नमन करके मन उनकी कांति से उमड़ रहा है । उनकी पवित्र आनन्दमयी स्मित अमृतमयी थी जो कि आनन्द की सरिता थी जिससे मन आह्लादित होता था।

वे कर्मादर्श जीवनादर्श तथा धर्मादर्श से अपनी शैवसाधना को परिपूर्ण करने में सफल रहीं। उनमें जीवन का सहज सन्तुलन था। संयम से जीवन की प्रत्येक अवस्था में रहना यह उनका नियम बन गया था। बड़ी भावुकता के साथ स्वामी जी के रविवारीय शैव-शास्त्रों के विश्लेषण में भाग लेना और अत्यन्त सौम्य शान्त भाव से सम्पूर्ण वातावरण को समृद्ध बनाना यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी। देवी जी अल्पभाषी थी परन्तु उनकी सरल भद्रमूर्ति सभी भक्तों को ईश्वरीय आह्लाद का अनुभव कराती थी। अत्यन्त विनीत भाव से भद्रतापूर्वक सबको इच्छानुसार परामर्श देना उनकी विशिष्टता थी। उनकी धर्म परायणता नैतिक एवं चारित्रिक दृढता प्रदान करती थी। उनका व्यक्तित्व असाधारण त्याग, नम्रता तथा विनय भाव से परिपूर्ण था। उनकी इष्ट साधना अविस्मरणीय थी।

देवी जी के व्यक्तित्व का एक और आयाम उनका रसिक भाव। उन्होंने अनगिनत सरस एवं चित्त को आह्लादित करने वाली कविताएँ लिखी हैं। वे भावुक थीं, कविता द्वारा अपनी अन्तर्मन में छिपी भाव-भक्ति का प्रकटीकरण उनकी रचनाओं की विशेषता है। वे स्वयं सहृदय थी अतः काव्य-प्रेमियों के लिए उनकी महान और सुन्दर वाणी प्रेरणादायक है। जैसे :–

"ओसुस ना दिगम्बर०,

या

"तोहि मा ढयूठ वोन शाम सोन्दरय"

या

"द्वयी हुन्द परद चठ रोज़ खबरदार" उनके ये उद्गार उच्च आध्यात्मिक ज्ञान और ब्रह्म जीव के पारस्परिक सम्बन्धों तथा इस मायामय जगत के रहस्य पर पूर्ण प्रकाश डालती है। वे स्वयं सिद्ध योगिनी थी।

देवी जी की दिव्य योग साधना असाधारण थी। अपनी "स्वच्छन्द तन्त्र" नामक रचना में ऐसी अलौकिक यौगिक शक्तियों से परिपूर्ण देवियों को श्री क्षेमराज ने "योग कन्या" के नाम के विभूषित किया है। उनके विचारानुसार ऐसी दिव्य योगिनी अपनी माता के गर्भ में ही योग-साधना में रत होती हैं और जन्म से ही यह दिव्य-योग सम्पूर्ण व्यक्तित्व को दिव्य बनाता है।

देवी जी आनन्दमयी सरिता थी।

सुरसरिसम सबके हित होई।

रामचरितमानस

वे प्रायः सदाचारियों के प्रति कृतज्ञ थीं और कृतघ्नता उनके व्यक्तित्व में नाम मात्र के लिए भी नहीं थी।

एक कुशल साधक के रूप में उन्होंने अपना समस्त जीवन इष्ट-भक्ति के प्रति अर्पित किया। समस्त कामनाओं को भाव-समाधि के प्रति न्यौछावर किया।

अपने जन्म-दिन पर जो कि स्वामी जी की देख-रेख में एक पर्व के रूप में मनाया जाता था वे अत्यन्त मधुर-भाव से श्वेत वस्त्र धारण कर, चरणस्पर्श द्वारा वातावरण को अत्यन्त आनन्दमय बनाती

थी। उनके चरण-स्पर्श से सबको असीम आत्म शक्ति का अनुभव होता था और आज भी उनका जन्म महोत्सव हम सबको अत्यन्त भाव-विभोर बनाता है। उनकी प्रभा तथा शील एवं प्रतिभा प्रमेय भाव से पूनम की आभा के साथ सर्व श्रेयस्करी बन जाती है।

देवी जी की यादें सर्व श्रेयस्करी परम सुखदायी एवं नित्य रहस्यमयी गुत्थी को सुलझाने में अत्यन्त कुशल थी। देवी जी सच्ची 'शिव योगिन, थी और बार-बार जीवात्मा को प्रेरणा देकर अपने रसपूर्ण शब्दों में कहती हैं –

"शिवस शरण गछ़।
शिवस शरण गछ़। शिवस शरण गछ"

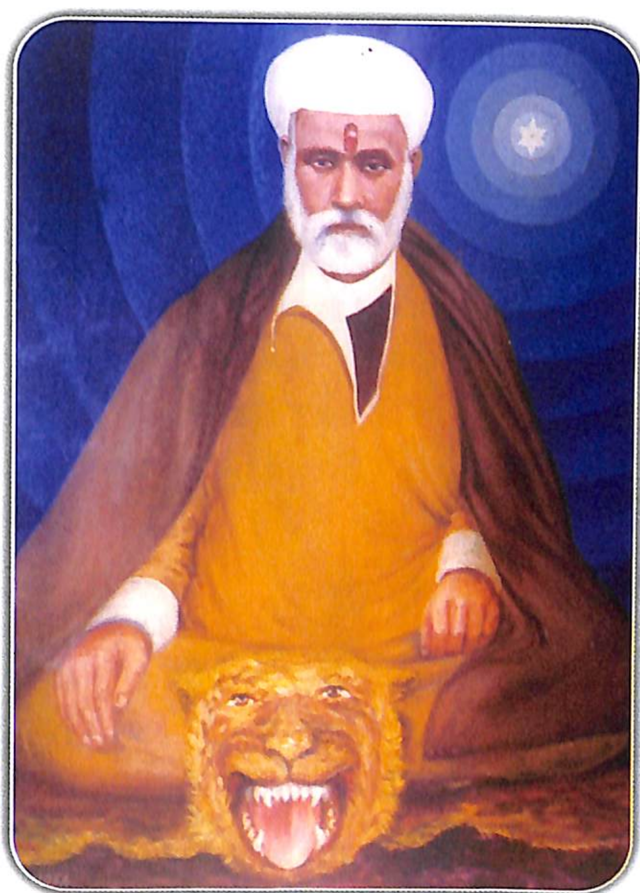
देवी जी का व्यक्तित्व बहु-आयामी था। अतः स्वामी जी जैसे तत्वदर्शी ही उस व्यक्तित्व के वैशिष्टय को समझ सके थे।

मैं अपनी इस भाव-भीनी देवी-स्मरण गाथा को विराम देने से पहले गोस्वामी जी के निम्नलिखित दोहे को उदृत करती हूँ :–

"साधुचरित सुभ चरित कपासू। निरस विसद गुणमय फलजासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंद नीय जेंहि जग जस

देवी जी बचपन से ही रामायण का पाठन पठन करती थीं। वज़ीरबाग में देवी जी के परिवार में रामायण के पाठ का प्रति रविवार को विधिपूर्वक हवन के साथ आयोजन होता था। देवी जी जगद जननी, महामाया, सृष्टि, स्थिति संहारकारिणी है। सदा हमारा मार्ग-दर्शन करती रहेगी, ऐसा हमारा दृढ़ संकल्प है।





स्वामी महताब काक

परमगुरु श्रीशारिका का
लेकर श्री राम का गुप्तविज्ञान
देकर सद्गुरु श्रीलक्ष्मण को
किया हंस ने महाप्रयाण।।

शैवयोगिनी देवी शारिका

– प्रो० मखनलाल कुकिलू

ऋषि वाटिका के नाम से विख्यात कश्मीर भूमि प्राकृतिक सुषमा का आगार होने के साथ-साथ सन्त परम्परा की उर्वरभूमि रही है। सन्तों की इस परम्परा का उत्स उनका साधनात्मक रहस्यमय जीवन था। यही इस शारदा देश की सांस्कृतिक विरासत है। प्रत्येक बुद्धिजीवी और अनुत्तर पथ के पथिक को इस अवर्णनीय विरासत पर महान् गर्व है। इसी साधनात्मक प्रवाह के गोमुख से रसमयी, शान्तिमयी व स्नेहमयी विश्व-दर्शन भागीरथी प्रस्फुटित हुई है। जिसके मन्थन व आलोडन से समय-समय पर दुर्लभ अमूल्य रत्नों की प्राप्ति हुई है। विरासत में प्राप्त हुई यह सन्त निधि चमत्कारपूर्ण और अपूर्व है। संस्कारों व नैतिक आचरण के उपदेशक ये सन्त भक्ति, वैराग्य और ज्ञान इन तीनों के समुच्चय होते हैं। भाव, धर्म और श्रद्धा के स्तम्भों पर ही हमारी इस सन्त संस्कृति का भव्य महल विराजमान है। आर्ष साहित्य की प्राचीनतम पुस्तक 'ऋग्वेद' के दशम मण्डल में श्रद्धा की महत्ता पर विशेष उल्लेख हुआ है। वहाँ "श्रद्धा सूक्त" में कहा गया है कि -

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु।।

अर्थात् "देवता और साधक वायुदेव के संरक्षण में श्रद्धा की उपासना करते हैं। अन्तःकरण में किसी संकल्प के जागृत होने पर वे श्रद्धा का ही आश्रय लेते हैं। श्रद्धा से ही साधक वर्ग पारमार्थिक वसु "धन" और अनन्त शक्ति का भागी होता है"। भारतीय संस्कृति का

सन्तसमाज इसी आर्ष वाणी का मुखर स्वर है। ऐसे महनीय सन्तों का समागम सामान्य जनता के लिए अत्यन्त दुर्लभ होता है, तथा वह भूखण्ड प्रशंसनीय माना जाता है जहाँ सन्तों का आविर्भाव होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में जब हम अपनी जन्मभूमि कश्मीर की ओर दृष्टिपात करते हैं तो अप्रतिहत आभामण्डल से देदीप्यमान अनन्त विभूतियों का साक्षात्कार होता है। आठवीं सदी के वसुगुप्त से लेकर सोमानन्द, उत्पलदेव, लक्ष्मणगुप्त तथा अभिनवगुप्त जैसे सन्त दार्शनिक मनीषी तथा उन्नीसवीं सदी के शैवाचार्य स्वामी राम, उनके शिष्य स्वामी महताब काकजी तथा उनके शिष्य सौम्य सन्त स्वामी लक्ष्मण जू महाराज उल्लेखनीय हैं। स्वामी राम जी तथा महताबकाक की छत्रच्छाया में पले हुए मेरे सद्गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी आधुनिक युग के प्रधान शैवाचार्यों में गिने जाने लगे। इनकी विद्वत्ता की धाक देश-विदेश में जमने लगी जिसके परिणाम स्वरूप न केवल देशी विद्वानों का तांता अपितु विदेशी विद्वान् भी अपनी शैवदर्शन सम्बन्धी ज्ञानवृद्धि के लिए इनके पास समुपस्थित हुए। अपने अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर ये समय-समय पर नवीनतम व्याख्याओं से जिज्ञ. ासुओं को अचम्भे में डालते थे। वास्तव में अहर्निश साधना में लीन होने के कारण क्षण-क्षण के पश्चात् उनमें नवीनता आती थी– भावों में ज्ञान में और अनुभूति में। जिससे इनकी रमणीयता में भी नवीनता का नवनव आभास होता था। महाकवि कालिदास की यह उक्ति - "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" इन पर पूर्णरूप से चरितार्थ होती थी। इन्हीं सन्त प्रवर दार्शनिक मनीषी कश्मीर शैवदर्शन के प्रकाण्ड पण्डित ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज की प्रधानशिष्या योगिनी देवी श्री शारिका जी है, जिनकी जन्म शताब्दी का गौरवगान वर्तमान संवत्सर की विशेषता है।



देवी जी का शैशव

श्रीनगर स्थित 'सराफ कदल' नामक मुहल्ले में श्री शारिका जी का जन्म, मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि पर सन् १९१३, तदनुसार वि० सं० १९७० को ब्राह्मी मुहूर्त में हुआ था। इनकी माताश्री का नाम श्रीमती राधिका रानी तथा पिताश्री का नाम श्री जिया लाल सोपोरी था। इनके पिताश्री बड़े आस्तिक महानुभाव थे। स्वभाव से ही धर्म तथा धार्मिक कार्यों में रुचि रखते थे। इनकी पत्नी भी अपने पति के स्वभाव के अनुकूल श्रद्धालु, सन्तसेवा परायणा तथा ईश्वर भक्ति में रंगी हुई थीं।

''होनहार बिरवान के होते चिकने पात' इस उक्ति के अनुकूल ही इनकी सुपुत्री देवी जी की मोहमयी देहलता, आकर्षणशील दिव्य आत्मा बाल्यावस्था से ही प्रतीत होती थी। परिवार के सदस्यों की तृप्ति बार-बार इन्हें निहारते हुए भी नहीं होती थी। दैवज्ञों के कथनानुसार नाना योगों से इनकी जन्मकुण्डली अनिर्वचनीय थी। समय-समय पर सारे द्विज संस्कार शास्त्रानुसार होने से इनकी महत्ता का आभास जन्म से ही होने लगा। संपन्न परिवार में उत्पन्न होने से इनका लालन-पालन सुचारु रूप से होने लगा। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इनके पिताश्री सारे कश्मीर मण्डल में प्रथम कश्मीरी पण्डित थे जो सिविल अभियन्ता के पद पर नियुक्त हुए थे। बाल्यकाल से ही अपने अद्‌भुत आकर्षण से देवी जी ने परिचित सगे सम्बन्धियों तथा अपने घर के सदस्यों को आकृष्ट किया था। धार्मिक ग्रन्थों के प्रति विशेष रुचि देवी जी को छुटकपन से ही थी। नौ वर्ष की आयु में ही इन्होंने तुलसीकृत रामचरित मानस का पाठ नवरात्रों में एक सप्ताह में ही पूरा किया। यह देखकर सभी इसका गुणगान करने लगे। वास्तव में यह इसके भावी जीवन की यात्रा का महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। इनकी दिनचर्या प्रातः चार बजे से आरंभ होती थी। प्रातःकाल की मधुर निद्रा को छोटी

आयु में ही इन्होंने तिलांजलि दी थी। दैनिक कृत्यों के संपादन के पश्चात् साधना में तल्लीन होकर बाह्य जगत् से विमुख रहती थी। इस अल्पायु में ही किस साध्य को प्राप्त करने की यह उत्सुक थी इसका ज्ञान इस साध्वी को ही था ऐसा प्रतीत होता था। कि इस किशोरी को पूर्वजन्मों के संचित शुभकर्मों के परिणामस्वरूप इस प्रौढ़ अवस्था का प्रथमाभास होने लगा था। सायं-प्रातः इस अवस्था का अनुभव करना एक असाधारण बात थी। अनजाने लोगों के लिए यह बाल्य क्रीडा थी पर ज्ञानियों के लिए एक असाधारण दिशा निर्देश था। एवं बाल्यावस्था से ही अद्भुत आयामों का कवच पहनकर इनकी देह कनकमयी बनी थी। आये दिन चमत्कारिक कार्य कलापों में कटिबद्ध रहते हुए इस किशोरी को देखकर असंभव की प्रतीति का आभास धूमिल दिखता था। इस दिव्य बाला की जीवनदिशा सत्प्रवृत्तियों की ओर दिन प्रतिदिन मुड़ने लगी। मन, विचार और भाव परिष्कृत होकर इनके भौतिक जीवन को समृद्ध बनाने में एकजुट हुए। अपनी परिधि से केन्द्र बिन्दु की ओर अग्रसर होती हुई यह बाला दैवी अंशों से सुसज्जित बनी हुई काम-क्रोध-लोभ व मोह की आसुरी प्रवृत्तियों से विरक्त होके सत्प्रवृत्तिरूप दिव्य शक्तियों को प्रश्रय और पोषण प्रदान करने में कार्यरत रही। ऐसी अलौकिक दिव्य शक्तियों का प्रभाव साधारण बुद्धिगम्य नहीं होता है। कहा है कि—

लोकात्तराणां चेतांसि को न विज्ञातुमर्हति।।

श्री गीताजी के शब्दों में भी तन्मय बुद्धि वाले, प्रभु में मन लगाये तन्मय श्रद्धा वाले, आत्म ज्ञान से समस्त पाप राशि को जलाने वाले साधक करामलकवत् मुक्ति को प्राप्त करते हैं। ईश्वरीय शक्ति का अचूक प्रभाव वे संपर्क में आये हुए लोगों पर अनायास डालते हैं, जिसके परिणामस्वरूप भावुक भीड़ का तांता लगता है। वे ऐसे आत्मज्ञानियों को ही महात्मा, सन्त, योगी आदि नामों से अलंकृत

करते हैं। किशोरी शारिका के ज्ञानदर्पण में कच्ची उमर में ही पराभाव का यह प्रतिबिम्ब झलक उठा था।

देवी शारिका के दो भाई और दो बहिनें थी। अग्रज का नाम श्री जवाहिर लाल सोपोरी था और अनुज का नाम श्री मोहन लाल सोपोरी था। इसी प्रकार अग्रजा का नाम "ट अठ्य" था जो जम्मू कश्मीर राज्य के प्रसिद्ध हिन्दी संस्कृत विद्वान् प्रो० जियालाल कौल की धर्मपत्नी थी। अनुजा का नाम श्रीमती प्रभादेवी जी है जो-ईश्वर आश्रम श्रीनगर में इस समय भी अपने सद्‌गुरु महाराज ईश्वर स्वरूप के वचनामृत का पान करने और कराने में सतत् परायणा रहती है।

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज की अग्रजा श्रीमती 'गुणवती' जी का विवाह शारिका देवी जी के अग्रज भाई श्री जवाहर लाल जी के साथ हुआ था। अतः स्वामी जी और शारिका देवी के घर के सदस्यों के आना-जाना स्वभावसिद्ध था। स्वामी जी महाराज जब अपनी बहिन के साथ उसके ससुराल में पधारे तो उन्होंने वहां कहा था कि इस घर के एक विशेष प्राणी के साथ हमारा पूर्वजन्म का गहरा सम्बन्ध है जिसका उन्मीलन एक दिन किशोरी शारिका को देखकर हुआ था-यही वह प्रत्यमिज्ञा थी जो प्रत्यभिज्ञाकार उत्पलदेव की दार्शनिक पहेली है।

बाल्यावस्था में अपने भावी सद्‌गुरु महाराज की तरह शारिका देवी जी मिट्‌टी के ढेलों को रोंदकर लिंगाकार प्रदान करती थी और समाहित चित्त से नित्य प्रति पूजा करके शान्ति का अनुभव करती थी। कभी-कबार कागज के पन्नों पर स्याही से-राम राम राम-लिख कर पारमार्थिक क्षुधा को शान्त करती थी। एक दिन इनकी अन्तर्मुख अवस्था को किशोरावस्था में ही भापकर स्वामी जी महाराज ने इनके छोटे भाई मोहन लाल जी को अपने साथ इन्हें लाने का आग्रह किया ताकि इस कंटीली सरणि पर चलने का सलीका उन्हें समझाऊँ जिससे

उनकी यौगिक प्रतिभा का उन्मीलन होगा। स्वामी जी महाराज से निर्बाध जीवन का आशीर्वाद पाकर समय की गति का उल्लंघन करके दोनों भाई-बहिन इस मार्ग में अग्रसर होते रहे। अपने इस छोटे भाई की दैवी लगन और सतत् प्रेरणा के फलस्वरूप ही शारिका देवी जी की अनवरत शास्त्र ज्ञान की प्राप्ति तथा आत्मिक उद्धार में चौमुखी वृद्धि संभव हो सकी। परमार्थ पथ के पथिकों का समूह इस आदर्श भाई श्री मोहनलाल जी का जन्म जन्मांतर आभारी रहेगा जिनके बलिदान के फलस्वरूप देवी जी के देवीत्व का उन्मज्जन, परिमार्जन और अनुशीलन संभव हो सका। सद्गुरु महाराज इन्हें सद्गति प्रदान करे।

अपनी इस लघु शाखा को बृहदाकार में देखने को आतुर स्वामी जी महाराज इसके संवर्द्धन, संरक्षण व सिञ्चन की सोच में सदा दत्तचित्त रहा करते थे। इसी उपक्रम में निशात बाग के समीप एक सुन्दर 'गोपी तीर्थ' नामक स्थान में कुछ दिनों के लिए श्री मोहन लाल जी के संग देवी शारिका जी स्वामी जी महाराज का आदेश पाकर तम्बू लगाकर रहने लगी। वास्तव में भ्रमण के बहाने साधना की परिपक्वता का अधिगमन ही मुख्य प्रयोजन था। संयोगवश देवी जी के घर के अन्य सदस्य जिनमें श्री प्रभा देवी और श्री मोती लाल जी सोपोरी (शारिका देवी जी के अग्रज के सुपुत्र) भी थे, वहां रहने के लिए आये। इधर देवी श्री शारिका जी को साध्य प्राप्ति की पिपासा व्याकुल करने लगी। वह स्वामी जी महाराज से बार-बार कहा करती थी कि "शंकर स्वरूप आपकी उपस्थिति में मेरी स्वरूप लाभ प्राप्ति में दो राय नहीं है। मेरी अनन्य भक्ति से आप विवश होंगे।" इस भक्ति की विवशता के उद्रेक से अश्रुधारा देवी जी के नेत्र कमलों से कई घण्टों तक निरर्गल फूटती रही। स्वामी जी महाराज आशुतोष हैं अतः अपने प्रकृत रूप में आकर देवी जी पर कृपा की और सिर पर हाथ रखते ही वह अन्तर्मुख हो गई। स्वामी से अभीष्ट वरों को पाकर देवी जी का आमूल परिवर्तन

हुआ और वह शिव योग की वास्तविकता में रंग गई। यह देख स्वामी जी ने शीघ्र इन्हें अपनी पूर्व अवस्था में लाया जिसके फलस्वरूप वह पुनः विह्वल हो उठी और यह आघात न सहकर अचेतावस्था में पड़ी जिसका उपचार विशेष वैद्यों से न होकर जन्मसिद्ध योगिराज के हाथों से ही सम्भव हो सका। देवी जी के माता-पिता स्वामी जी की अलौकिक शक्ति चमत्कार से हतप्रभ हुए और मन ही मन स्वामी जी महाराज से अपनी सुपुत्री की विशेष स्थिति में स्वस्थ रहने की प्रार्थना करने लगे। इसी घटना के चक्रव्यूह में उलझी हुई देवी जी को साक्षात् शंकर स्वरूप में स्वामी जी महाराज टांगे में आगे बैठे हुए दिखाई दिये और अपने अस्तित्व को तत्क्षण खो बैठी।

इस आलौकिक घटना के बाद कई अन्य विस्मयावह घटनाओं ने शारिका जी के मन को झकझोरा और गुरु भक्ति की ओर वह अपना संयम खो बैठी। देवी जी अब पूर्णरूप से अद्वैत शैव-दर्शन की साधना में लगी। इसी परम्परा में उन्होंने प्रत्यभिज्ञाहृदय, शिवसूत्र, गीतार्थसंग्रह, शिवस्तोत्रावली आदि ग्रन्थों का तन्मयता से अध्ययन किया, साथ ही अपनी साधना के आयामों को शास्त्र ज्ञान के आधार पर परखती रही।

कुछ समय के पश्चात् इन दिव्य आत्माओं के माता-पिता ने ईंशबर नामक पहाड़ी के दामन में अलग अलग दो बड़े सुन्दर मकान आमने सामने बना दिये जहां दोनों गुरु और शिष्य समाधिस्थ हो के आनन्द विभोर रहते थे। सन् १९३४ में पन्द्रह दिन नवरात्रि प्रतिपदा तक जप-यज्ञ ग्यारह पण्डितों की देखरेख में कराके गृह प्रवेश किया और फिर वहीं रहने लगे। भक्तों का आना-जाना दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगा और वन्य शांति में अधिक भंग होने के भय से थोड़े से दाम पर में दोनों ने वह सम्पत्ति बेच डाली और निशात तथा गुप्त गंगा के मध्य में समतल भूमि पर मकान बनवा कर रहने लगे। इसे वर्तमान ईश्वर-आश्रम नाम रखकर ई० सन् १९६२ से यहीं समाधिसुख से लाभान्वित हुए। इसी

आश्रम में महान् सन्तों को आना-जाना हुआ। बड़े-बड़े विदेशी विद्वान् तथा स्वदेशी विद्वानों ने भी इसी आश्रम में पधार कर शैव शास्त्रों के मूर्धन्य शास्त्रों का अध्ययन किया तथा अनेक ग्रन्थों का देशी विदेशी भाषाओं में अनुवाद किया। गुरुवर्य के साथ-साथ इसी आश्रम में देवी शारिका जी तथा उनकी छोटी बहिन-सेवक गोपी नाथ के संग रहने लगे। इस नये आश्रम का नाम ईश्वर-आश्रम देवी जी ने ही रखा और गुरुवर्य को ईश्वर-स्वरूप मानकर पूजने लगी और इसी ईश्वरस्वरूप के नाम से सारे साधक शिष्यवर्ग व भक्तजन इन्हें पुकारने लगे।

यहां यह उल्लेखनीय है कि देवी जी की छोटी बहिन श्रीमती प्रभादेवी जी (जन्म जुलाई १९२५) के पूर्वजन्मों के संस्कार चरम सीमा पर आये थे, जिनके परिणामस्वरूप खण्डित विवाहित जीवन में सांसारिक सुखों को तिलांजलि देकर साधना के रहस्यों से अभिभूत होकर उन्होंने उस कंटीले पथ पर कदम रखा जो रोमांचकारी और विस्मयावह था। सद्गुरु महाराज की अगुवाही में पूनम की चांद की तरह इनकी कलावृद्धि उत्तरोत्तर हुई। सद्गुरु की कृपा के फलस्वरूप ही इनका वाधित जीवन अखण्ड ज्योति के समान रात-दिन जग मगाने लगा। इस समय भी यह सारे देश की एकमात्र महिला है जिसे कश्मीर शैवदर्शन का परंपरा गत गुरु प्राप्त ज्ञान है। इनके सान्निध्य में ईश्वर-आश्रम निशात में कई जिज्ञासु नर-नारी इस समय भी अपनी जिज्ञासा को शान्त करके कृत कृत्य होते हैं। इतना ही नहीं इस समय भी सर्दियों में कश्मीर से निकल कर जम्मू-चण्डीगढ-दिल्ली आदि स्थानों पर अपने सद्गुरु प्राप्त ज्ञान को जन साधारण में बांटकर अपने को धन्य समझती है।

गुरुदीक्षा

सद्गुरु स्वामी जी महाराज गुरुमंत्र दीक्षा से पूर्व बहुत समय तक तृषार्तों की परीक्षा लेते थे और शैवी साधना के मेरुदण्ड शैवी यम

नियमों से साधकों को परिचित कराके साधना की एकाग्रता और अनुसन्धानरूपता पर प्रकाश डालते थे। देवी शारिका जी भी इसका अपवाद नहीं थी। स्वामी जी की बड़ी बहिन अपनी ननद की ईश्वर भक्ति प्रशंसा स्वामी जी से आये दिन करती रहती थी तो स्वामी जी के आदेशानुसार एक दिन अपने साथ वह इन्हें ला बैठी। स्वामी जी इस किशोरी की एकाग्रता देखकर चकित हुए और मन-ही-मन इसे अपना शिष्य समझने लगे और शारिका देवी भी इन्हें अपना गुरु मन-ही-मन समझ बैठी। इसी प्रकार की अन्य अननुभूत घटनाओं के घटित होने का प्रभाव भी पहिले से ही देवी जी को समय-समय पर प्रभावित करता रहा। इन्हीं घटनाओं का अणु बीज अन्तस्तल धरापर धीरे-धीरे वृक्ष का रूप धारण करने लगा और अनुभवी माली के सामयिक सिंचन मात्र से लहलहाने लगा। अन्ततोगत्वा सन् १९३२ में विधिवत् दीक्षा गुरु महाराज से लेकर अपने साधना पथ को प्रशस्त करने लगी। साधना के विभिन्न आयामों को समय-समय पर पार करती हुई खरा सोना बनकर प्रत्येक नरनारी के कानों का आभूषण बनी। समभाव की भावना से ओतप्रात तथा द्वैतभाव से अपरिचित मन से "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" को जानकर शारदीय पूर्णिमा के समान शीतलता प्रदान करने का साधन बनी। गुरुभक्ति को ही अपने जीवन का प्रधान अंग मानती हुई यह अपने सुख भोगों को तिलाञ्जलि दे बैठी। अपने चन्दनतुल्य शीतल स्वभाव के कारण कभी भी गुरु के क्रोध का पात्र नहीं बनी। तन्त्रों में कहे गये गुरुभक्ति के गुणों की वह साकार मूर्तिमती थी। सुख दुःख, लाभ हानि, जय पराजय, ईर्ष्या द्वेष, रागविराग आदि को त्यागकर सद्गुरु सेवा परायणता को ही ये अपने जीवन का एकमात्र ध्येय समझ बैठी थी। सूई की नोक के तुल्य नगण्य सद्गुरु महाराज का मानसिक असन्तुलन अशान्ति का कारण बनकर इनके जी को कचोटता था। शाम्भवी दीक्षा के फलस्वरूप ही देवी जी ने ब्रह्मचारिणी

व्रत की ठानी, हालांकि-माता पिता ने सुयोग्य वर की तलाश शुरू कर दी थी। विवाह की तिथि भी नियत हो चुकी थी। स्वामी जी महाराज की हामी के लिए भेजे गये परिवार के सदस्यों से देवी जी के विवाह की बात सुनकर सद्गुरु महाराज ने उन्हें सूचित किया कि जिस दीक्षा में इन्हें दीक्षित किया गया उस की महत्ता से साधारण मानव इनका पति नहीं बन सकता इनका विवाह भगवान् शंकर से हो चुका है। इन्हें आजीवन ब्रह्मचारिणी बनकर रहना है। गुरु महाराज का कथन अन्यथा कैसे हो सकता क्योंकि जिस वर को इनके लिए चुना गया था उन्हें स्वप्न में देवी शारिका भगवती स्वयं मूर्तिमान प्रत्यक्षरूप में आई और इस सम्बन्ध को शीघ्र भंग करने की ताकीद कर बैठी अन्यथा भयानक परिणाम को भुगतने का निर्देश देकर अदृश्य हो गई।

स्वामी जी की अपूर्व गुरुदीक्षा के प्रभाव से सभी आश्चर्यचकित हुए और भूरि-भूरि जय जय कार करने लगे। देवी जी अब विशेष रूप से अभ्यास में जुट गई। सदा नवीन अनुभवों तथा नवीन चमत्कारों से वह प्रभावित होती रही। इस महत्ता के संवर्धन और परिस्फुरण के लिए शैवशास्त्रों का सुचारु अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने मुख्य शैवी ग्रन्थों के साथ-साथ आचार्य अभिनवगुप्त के विशालकाय "तन्त्रालोक" नामक ग्रन्थरत्न को गहराइयों के साथ पढ़ा, समझा और मनन किया। इस भगीरथ प्रयास में छोटी बहिन प्रभा जी ने इनकी सहायता करके अपने को धन्य समझा। इस प्रकार अविरत साधना क्रम में अपनी शिष्या की तन्मयता को और सांसारिक विषयों के प्रति उपेक्षा भाव को देखकर सद्गुरु महाराज फूले न समाते थे। देवी जी के इसी उपासना भाव को और सुदृढ़ बनाने के लिए गुरु महाराज ने एक दिन रात के तीन बजे शारिका जी को हारी पर्वत की परिक्रमा के लिए अपने संग पुरुष वेश में पगड़ी बांधे लिया और वहां अनन्त देवी देवताओं का साक्षात्कार कराकराके मोहित किया। रात के अन्धेरे में ही लौट कर



तुंग हिमालय सुखासीन है, संग बिराजे इक हिमखण्ड।
अरुणोदय के नवमयूख से, मोती–सा जो बना प्रचण्ड।।



गुरु शिष्य का संयोग अनूप यह, किस तत्त्व का है करता मन्थन।
महोदधी से निस्सृत रत्नों, की राशि का करते चिन्तन।।

गुप्त ज्ञान को गुप्तनिधि के समान ही गुप्त रखा। पगडी बांध कर संग लेने का स्वामी जी का प्रयास देवी जी के चारित्रिक उजास को शशांक तुल्य निर्मल रखने का उपक्रम था। एवं अभ्युपगत ज्ञान को शास्त्रों के आधार पर परखने के लिए देवी जी अपने अनुज श्री मोहन लाल जी सोपोरी के साथ नियत रूप से अपने सराफ कदल के आवास स्थान से स्वामी जी महाराज के पास "फतेह कदल नमच्चि बल" आया करती थी और शैवशास्त्रों के मूर्धन्य ग्रन्थों का मनन करती रही। यह देवी जी की साधना का दूसरा पड़ाव था।

शारिका देवी की सौम्यमूर्ति अतीव आकर्षक व चमत्कारमयी थी। शैव योगिनियों का प्रत्येक हावभाव चमत्कारपूर्ण तो होता ही है। इनके व्यक्तित्व की महक से सारी दिशायें सुवासित होती हैं। अनुभव के विविध आयामों को छूकर इनकी देह स्वर्णिम होती है। अपनी संयत शान्ति से तथा अपूर्व आध्यात्मिक प्रभा से ये सबों को हतप्रभ करती हैं। मितभाषी होने से मौन मन्त्र देने के अनुरागी होती हैं। असत्य का भ्रम जाल बुनने वाले पथभ्रष्टों को सही मार्ग प्रदर्शन कराने में व्यग्र रहती हैं। धार्मिक क्रिया कलापों के दिग्दर्शक बनकर सदा जागरूक रहती हैं। विकल्पों के फेनिल लहरों के आपात से विचलित न होकर पर्वत की चट्टान के तरह अडिग रहती हैं। किसी सत्य संकल्प के जन्मते ही इन शैव योगिनियों की सभी मानसिक शक्तियां एकजुट होकर इच्छित दिशा की ओर अग्रसर होती हैं। सभी असत्य कल्पनायें इनके अन्तस्तल को कचोटती हैं और फिर रेगिस्तानी अंधेड़ में बिखरती हैं। अपने शरणागतों के छोटे से छोटे शुद्ध संकल्पों की पूर्णता के लिए ये दत्तचित्त रहती हैं। उपस्थित अवरोधों एवं समस्याओं का गहराई से निरीक्षण करती हुई निजी आत्मिक अनुभूतियों का प्रमाण देकर मार्ग प्रदर्शन करती हैं। वास्तव में इन पुनीतात्माओं का अवतरण विशेष शंखनाद सा होता है। जिसकी गूंज-अनुगूंज स्फोटात्मक होती है। इन जितेन्द्रियों का स्वरूप वन्दनीय होता है जो क्षण-क्षण के पश्चात् नया

ही नया प्रतीत होता है। कहा भी है = "नव्यत्वमाप्नोति क्षणे क्षणे या, काया सा वन्द्या विजितेन्द्रियाणाम्"॥ इसीलिए निर्वाण प्राप्ति के महान् अन्तराल के पश्चात् भी इनकी यशोकाया पूर्ववत् मनस्विनी और सुपथदायिनी होती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा की मूर्तिमयी इन देवियों के वचनों में इतनी शक्ति व ऊर्जा होती है कि पत्थर की लकीर की तरह अमिट होती है। इनका वरदहस्त सांसारिक कष्टों व दुःखों से दूर रखने में सक्षम होता है। इन पुनीत आत्माओं का जितना मुक्तकण्ठ से गौरवगान किया जाये, कम है। कहा भी है :–

भवन्ति नम्रास्तर वो फलोद् गमैः
नवाम्बुभिः दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः।
परोपकाराय हि सतां विभूतयः॥

स्वरचित पद्यान्तरण =

पक्व फलों के बहुप्रभार से नम्र सदा रहते तरुवर
नवनव सलिल बिन्दु भार से दूर-सुदूर लटकते जलधर
समृद्धि बोझ से बोझिल हो भी नम्र सदा रहते मुनिवर
सर्वस्व अर्पण परोपकार के लिए सदा सज्जन तत्पर।

देवी जी की कवित्वशक्ति

श्रीमालिनीविजयोत्तरतन्त्र में कहा है कि –
रुद्रशक्ति समावेश के पांच चिह्न हैं उनमें

कवित्वं पंचमं प्रोक्तं सालंकारं मनोहरम्
सर्वशास्त्रार्थ वेत्तृत्वं अकस्मात् चास्य जायते॥

अर्थात् "जब शैव साधक को रुद्र शक्ति समावेश होता है तो उसमें कवित्व शक्ति की सर्जना अकस्मात् होती है जो सुन्दर और अलंकृत होती है।" इस कथन के आधार पर शैवयोगिनी श्री शारिका

देवी की कवित्व शक्ति कृत्रिम न होकर दैवी देन थी। अपनी मातृभाषा में रचित इनकी कुछेक कवितायें रहस्यात्मक अनुभूतियों से परिपूर्ण थी। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर रचित कविता को इन्होंने साधना के दर्पण के साथ मिलान किया और श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण को संवित् धाम का प्रतीक माना। छायावाद की पृष्टभूमि पर लिखी इस कविता में जिन नपे तुले शब्दों का प्रयोग किया है वह इनकी गहन अनुभूति का प्रतिबिम्ब है। मुरली मनोहर की मुरली को जागतिक पदार्थ और इनके चंचल नेत्रों को मोहमाया के साथ तुलना की है। यहां तक श्रीकृष्ण के माता-पिता देवकी-वसुदेव को प्राण और अपान और शरीर को कारावास माना है।

"देवकी वसुदीव प्राणापानय,
दीहम्योन आसवुन छु जेलखानय।
मध्यस मंज जाव कृष्ण गुन्दरय,
त्वहि मा डयूठोन श्याम सुन्दरय।
युस हय न्यवर सुय मन्यि अन्दरय त्वहि मा डयूठोन श्याम सुन्दरय।।"

भाषा रूपान्तरण

प्राणापान वसुदेव देवकी
देह मेरी है कारागार
मध्यधाम में उदित हुए तब
कुञ्जबिहारी राधाराय,
क्या सखि ! देख्यौ कहीं नन्द राय?

कविता की तीसरी पंक्ति में जो "मध्यधाम" शब्द आया है यह शैवदर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है। शैवयोगी मध्यधाम अर्थात् सुषम्नाधाम या मध्य सन्धिस्थान पर जब अपना ध्यान केन्द्रित करता है तो जागतिक पदार्थों की अनुभूति का पूर्ण विलय होता है और स्वस्वरूप

का साक्षात्कार अनायास होने लगता है। इसी कविता में कवयित्री देवी जी ने सुन्दर शब्दों में इस तथ्य को कैसे उजागर किया है – जरा देखिये –

"युस हय न्यबर सुय मन्यि अन्दर
अथस छस मुरली नअल्य पीताम्बर
चंचल नेत्र नाव मुरलीधर
मुरली सअत्यन मुहरावनय
त्वहि भा ड्यूठोन श्यामसुन्दरय।"

भाषा रूपान्तरण
बाहर जग में प्रकट भये जो
तनमें वही समाय
क्या सखि ! देख्यो कहीं नन्द राय
करमुरली ओढे पीताम्बर
चपल नयन हैं मोहक चाल
भवविख्यात नाम मुरलीधर
मुरली राव सबै इतराय॥

यहां चपल नयन मोहमाया का प्रतीक हैं और मुरली सांसारिक भाव जगत की। मुरली राव अर्थात् विषय वासनाओं का आकर्षण प्रथमाभास में सभी साधकों को विचलित करता है पर करणेश्वरियों का स्वरूपज्ञान ही साधक को निमज्जन से बचाकर उन्मज्जन की ओर धकेलता है। कितना गम्भीर भाव साधारण शब्दों का प्रयोग करके अभिव्यक्त हुआ है। इस कविता में कवयित्री ने साधना के अन्यतम रहस्य को एक और पद में किस प्रकार सरल शैली में अंकित किया है :–

"व्रच म्यानि गूपी न्यूख छलअरअविथ
दूरान दूरच्यव घरबार त्रअविथ

घर छिस सअरची
छुस न कुन्यि घअरय
त्वह्यि मा ड्यूठोन श्याम सुन्दरय॥"
भाषा रूपान्तरण =
बनी गोपियां करण वृत्तियां
भरमा गई श्री नन्द कुमार
अन्तःपुर तजकर आवेग में
गह्यो विदूर दूरतम गार
है जो सर्वालयवासी विभु
पर अकेतन और अकाय॥

यहां गोपियों को साधक की इन्द्रिय वृत्तियों का रूप माना है जो नियत पथ से भरमाकर साधक को अविद्या के गर्त में धकेलती हैं। जिसके परिणामस्वरूप देह देवालय को छोड़ मनमन्दिर का देव कोसोंदूर जाता है। वास्तव में उसका वास कण-कण में हैं, वह प्रत्येक भाव का साकार रूप है फिर भी वह निर्विकार और निराकार है॥

हिन्दी के प्रतिष्ठित छायावादी कवियों की सी भावव्यंजना को देवी जी ने किस प्रकार अपनी मातृभाषा में सुव्यक्त किया है यह कवितामर्मज्ञ आलोचक ही बता सकते हैं।

देवी जी की दूसरी कविता तत्त्वज्ञान की पराकाष्ठा है। इस कविता का शीर्षक "गफलत" है जो जन्ममरण की आधारशिला है। 'गफलत' अर्थात् असावधानता से ही जीव सत्य को असत्य मानकर नानाप्रकार के बन्धनों तथा मोहमाया के जाल में उलझ जाता है। देवी जी ने इस तथ्य को भली-भांति जानने के पश्चात् ही साकार रूप में इसे इन शब्दों में उकेरा है।

दोह अकि च्यूनुम छुस बअ कुस,
सथ च्यथ जगथ आनन्द युस।

विषयन हंजऽय नफरत गयऽम
गफलथ गऽयम गफलथ गऽयम॥
कामन ब़अ लोगुस दाव सऽय शुहला करुम स्वख वावसऽय,
जोनुम न अत्य मा चूऽर प्ययम,
गफलथ गऽयम गफलथ गऽयम।
भाषा रूपान्तरण
जाना नहीं मैं कौन हूँ
सत्य जगत आनन्द हूँ,
समझा हलाहल विषय सार
हाय गफलत बनी ठगावन हार।
विषयों ने हाय! बेबस किया।
सुख बात मन मोहक बना।
जाना कभी ना तथ्य को,
लूटें लुटेरे एक बार॥
हाय गफलत बनी ठगावन हार

देवी जी ने इस गफलत-प्रमत्तता-असावधानता अवहित होने का अभाव-विक्षिसता-अजागरूकता को जिस यौगिक परिभाषा में लिपिबद्ध किया है। वह इस प्रकार है :-

"गफलथ छ्रि जीवभावुक चिह्न
गफलथ छि वासनाय हुन्द प्रेयम
गफलथ यह्नय वअतिथ प्ययम
गफलथ गयम गफलथ गऽयम।"
भाषा रूपान्तरण–
गफलत लक्षण जीवत्वका, गफलत वन्धन है
वासना का, हुआ इसी से शरमसार, हाय!

गफलत बनी ठगावनहार।

इस दैवी निग्रह से अछूता रहने के लिए देवी जी ने साधकों को सचेत किया और कहा है

जीवो क्षण-क्षण बुध च़ऽअ रोऽज़

अद बोज़ख अन्दरचुम चअ सोज

भाषारूपान्तरण

जीव रह हरपल हुशियार, तभी बजेगी मन की तार

इसका परिणाम क्या होगा–उस ओर भी देवी जी ने संकेत किया है।

साज़स मन्जऽय न्यन्दरा प्ययम गफलथ गऽयम गफलथ गऽयम।

छुसना व सथ च्यथ शिव स्वरूप

च़ेननु ह्यतुम पननुय स्वरूप

तत्त्व शक्ती अऽश्रित गऽयम

गफलथ गऽयम गफलथ गऽयम।

भाषा रूपान्तरण –

लीन तन्त्री के पंचम स्वर में

बिसराया सारा व्यवहार

गफलत बनी ठगावन हार।

जब लगा परखने निज स्वरूप

जाना हूँ मैं सत् चित् शिवरूप

तत्त्व शक्तियों को हुआ प्रहार

गफलत बनी ठगावनहार।

अद्वैतवादिनी देवी जी ने भेद प्रथा भाव को चूहों के साथ तुलना की है और कहा है :–

अस्यिम भ्यअ स्वर्ग क्य जाम नऽल्य

कामन त क्रूधन करि म्यअ अऽल्य
यिम जामअ भीद गगरव ख्ययम।
गफलथ गऽयम गफलथ गऽयम।

भाषा रूपान्तर –

दिव्याम्बर से शोभित फिर भी
काम क्रोध ने तड़पाया
भेदवृत्तिरूपी चूहे सब
चाट के फिर भी बने सरदार
हाय ! गफलथ बनी ठगावनहार।

शैवयोग में शिव के साथ एक होने का भाव जब उदित होता है तो अभेदभाव का आभास उजागर होता है और साधक के पूर्व संचित कर्म धीरे-धीरे जलकर राख होते हैं और उन्मीलन अवस्था का स्पन्दन आरंभ होकर जिस अवस्था का प्रस्फुरण करता है, देवी जी ने अपनी कविता में उसकी अभिव्यञ्जना इस प्रकार की है :–

"संसार निश यल्य पऽत्य वअ च़ास
केंह काल करुम एकान्तवास
सोरुय वुधुम पननुय व्यकास
ही थऽरअ फुल्यिथ जन
यति प्यठ ब्रऽअ आस गोम
तमिकुय भास सोरुय बुछुम संव्यथ व्यकास
अद काल सय गव अत्य पूर्ण ग्रास
सोरुय वुछुम पननुय व्यकास।"

भाषा रूपान्तरण –

जग से पराङ्मुख जब बना
रहवास का प्रेमी बना
जागी अद्वैतमय भावना

पुष्पित सुवासित मञ्जरी सा
था स्वरूप का ही यह आभास
जिस उत्स का मैं अंश था
उसका यही था सत्य ज्ञान
जाना यह जग संवित् विकास
जहां काल कल्पना का न भास
विश्वमय अवस्था का विकास॥

शैवयोगिनी देवी जी ने कश्मीर शैवदर्शन का अमृतपान, आशुतोष के मुखारविन्द से जीवन भर जिस निष्ठा और लगन से, जिस आस्था और विश्वास से, जिस भाव और भावना से, जिस ध्यान और धारणा से, किया उपरोक्त कविता के ये अन्तिम पद उसी का प्रति-फलन है। सत्यमेव शैव साधना की चरम अवस्था का यह स्फार है।

महान् विभूतियों से मिलन

अपने सद्गुरु ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज के सदा सान्निध्य में रहने से देवी जी का आमूल-चूल परिवर्तन होना प्राकृतिक था पर इनकी अन्तश्चेतना का विस्फार चन्द्रकला की नाई धीरे-धीरे इस प्रकार हुआ कि एक दिन पूनम का सुधाकर ही स्फुट हुआ। अपने पूर्वजन्मों के संचित पुण्य कर्मों के फलस्वरूप देवी जी ने वटवृक्ष के आश्रय में रहकर अपने अस्तित्व के भाव में अनेक आयाम जोड़े। जिन महान् विभूतियों का आगमन स्वामी जी महाराज के दर्शन करने के लिए ईश्वर-आश्रम में होता रहा उनके संपर्क में देवी जी का आना स्वतः सिद्ध था। देवी जी की ईश्वरीय शक्ति का प्रतिबिम्ब उपस्थित सन्तों के हृदयदर्पण में अनायास पड़ता था और वे स्वामी जी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे कि उन्हें ऐसी ओजोमयी दिव्य मूर्ति का सद्गुरु बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सन् १९५८ में बनारस के प्रकाण्ड संस्कृत विद्वान् आचार्य श्री रामेश्वर झा स्वामी जी को अपने गुरुरूप में पाकर

प्रफुल्ल-चित्त हुए। साथ ही देवी स्वरूपा विमर्श शक्तिमयी श्री शारिका देवी को सान्निध्य में पाकर झूम उठे मानो रत्नों के पारखी को अभीष्ट रत्नों की प्राप्ति हुई थी और अपने जीवन को धन्य समझा था। तेईस वर्षों तक इन दोनों के सम्पर्क में रहकर आचार्य जी ने अपने जीवन की उपलब्धियों की इति मानकर सन् १९८१ में इहलोक को त्यागकर निर्वाण प्राप्त किया।

"शारिका चर्चास्तव" पुस्तिका लिखकर आचार्य जी ने देवी जी की दिव्य विभूतियों का जो गुणगान किया, अवर्णनीय है और सन्त महिमा की पराकाष्ठा है।

सन् १९५७ में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त श्री मेहरबाबा, स्वामी जी से मिलने आये पर स्वामी जी अपनी कुटिया 'गॉड्स हाऊस' के निर्माण कार्य में व्यस्त होने के फलस्वरूप उन्हें न मिल सके पर देवी जी से उन्हें मिलने को प्रेरित किया।

जगाधरी के सन्त श्री सत्चिदानन्द जी सन् १९७८ में स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ आश्रम पधारे। वहां देवी जी की निगूढ़ सात्त्विक शक्ति का साक्षात्कार कर "शारिका बोध" नामक पुस्तिका देवी जी को समर्पित की जिसका प्रकाशन देवी प्रभा जी के संपादकत्व में हुआ। यह पुस्तिका गागर में सागर है और संत की निजी अनुभूतियों का प्रतिफलन है।

सन् १९६६ में रासबिहारी श्री स्वामी बाल कृष्ण जी महाराज आश्रम में पधारे। इससे पूर्व स्वामी जी महाराज भी देवी जी के संग उनके वृन्दावन धाम पर पधारे थे जहां दोनों का भव्य स्वागत हुआ था। श्रीनगर आश्रम में इनकी उपस्थिति से अद्भुत वातावरण की छटा झलकने लगी थी। फिर 'कमला बाबा' जो स्वामी जी महाराज की सच्छिष्या थी, के प्रांगण में रासलीला का अद्भुत आनन्द प्रदान किया। इस रासलीला में देवी जी की स्वात्मानुभूति का साक्षात्कार वांछनीय था।

सन् १९७४ में भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जब स्वामी जी से प्रथमबार मिलने आश्रम पधारीं तो स्वामी जी की अलौकिक ऊर्जा से हतप्रभ होकर वह अवाक् हो गई। स्वामी जी के आदेशनुसार फिर शारिका देवी के दिव्य हाथों से बनी चाय आदि का पान कर अमृत वर्षा से सिंचित होके प्रकृतिस्थ हुई और देवी जी के दर्शन को अपना सौभाग्य समझ बैठीं।

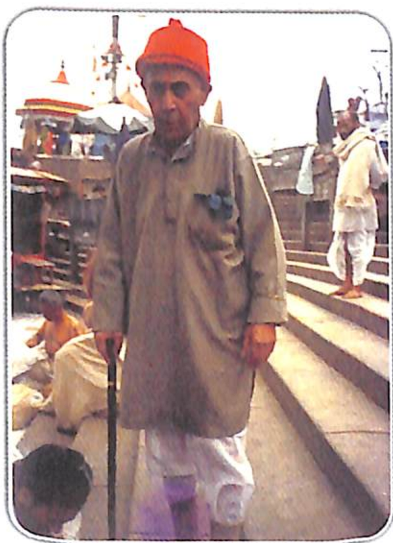
सन्तों के अतिरिक्त विद्वानों, दर्शन शास्त्रज्ञों जिनमें जयदेव सिंह, श्रीमती बिटीना जी, डा० परमहंस मिश्र हंस, डा० बलजिन्नाथ पण्डित, प्रो० नीलकण्ठ गुरुटू, श्री दीनानाथ यक्ष, श्रीजान ह्यूग आदि कलाक. रों साहित्य प्रेमियों, अनुभवी साधकों के समागम से भी देवी जी की स्वात्म प्रतिभा की परिधि का विस्तार होता रहा।

निजी अनुभूति

तीन दशकों से अधिक मेरा देवी जी के साथ संपर्क रहा। उससे पूर्व मैं अपने पिताजी श्री विश्वनाथ तथा चाचा श्री रघुनाथ जी से इनकी महत्ता के विषय में यदा-कदा सुनता रहा। मेरे चाचा जी का और देवी जी का बहुत समय तक समीप सम्बन्ध रहा। संस्कृत भाषा के विद्वान् होने के कारण मेरे चाचा जी देवी जी को बहुत समय तक संस्कृत भाषा के स्तोत्रग्रन्थों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों का अध्यापन कराते रहे। इस अवधि में देवी जी की अलौकिकता का भान जो समय-समय पर इन्हें होता रहा उससे देवी जी के प्रति उनकी श्रद्धा व आस्था में उत्तरोत्तर वृद्धि होती थी। यहां तक कि एक बार इन्हें अपने कमरे में अपने नियत आसन से ऊपर उठकर वायुमण्डल में आसन पर विराजमान देखकर वे आश्चर्यचकित हो उठे थे। यहां यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इस घटना का उल्लेख मैंने स्वामी जी से भी किया था जिस पर वे फूले न समाये और अपने कला कौशल पर मन ही मन चिन्तन करने लगे।

देवी जी के प्रति मेरी आस्था असीम थी। वे मुझे प्रणाम करने नहीं देती थी क्योंकि उनके मन मे मेरे चाचा जी का अटूट सम्मान था अतः वे मेरे भाव को आचार-विरुद्ध समझती थी। कभी कभार मेरी जागतिक व्यथा को बिना कहे समझकर स्वामीजी महाराज से उसका निदान मांगती थी। सद्‌गुरु भक्ति का यह कितना अपूर्व दृश्य होता था। देवी जी स्वयं सर्व समर्थ हो के भी कभी अपने गुरु महाराज की प्रतिष्ठा पर आंच आने नहीं देती थी। जिस उलझन को इंगित मात्र से वह सुलझाने में सक्षम थी उसे सद्‌गुरु महाराज के चरणों में सौंपकर अपने को पराधीन समझती थी। इनका स्वभाव इतना शीतल था कि तीन दशकों से भी अधिक काल-अवधि में मैंने कभी उन्हें अपने गुरुमहाराज से ऊंचे स्वर में बोलते नहीं देखा हो। क्रोध की छाया को भी अपने मुख मण्डल पर पटकने नहीं देती थी जिससे उनका सौम्य सन्त स्वरूप सदा निखरता दिखाई देता था। अतिथि सेवा का वह चरम उदाहरण थी। जब कभी स्वामी जी की अनुपस्थिति में उनके पास बैठने का सौभाग्य प्राप्त होता था तो अपने करकमलों से सलीके से घी वाली रोटियां सेक कर चाय के साथ परोसने में कभी हिचकिचाती नहीं थी। हमारी गार्हस्थिक उलझनों को सुलझाने की सिफारिश स्वामी जी से करके अपनी महानुभावता का परिचय कराती थी। सद्‌गुरु बहिन होने के साथ-साथ वह मां की ममता का भी अनिर्वचनीय प्रतीक थी। परदुःख कातरता - परानुग्रह शीलता - वात्सल्य आतुरता - परोपकार विह्वलता और सत्कर्म परायणता, ये देवी जी के चरित्र के पांच स्तम्भ थे जिन पर इनकी यशोकाया सदा सुदृढ और पर्यन्त गामिनी रही और रहेगी। संक्षेप में देवी जी को श्रद्धा-आस्था और संवित्स्फार का यदि संगम कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

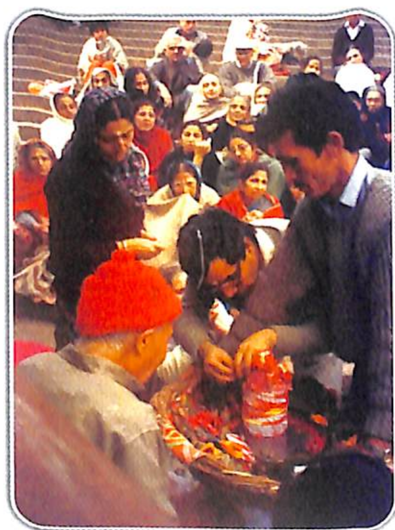
देवी जी की इन अकाल्पनिक चारित्रिक विशेषताओं की ऊर्जा से विवश होकर, इनकी ही प्रेरणा के परिणामस्वरूप, मैंने पहले शारिका दशक और फिर शारिका-अष्टोत्तरशत नामा वली की रचना करके अपने



सुरसरिता में सत् शिष्या का
अस्थिप्रवाह करने को आतुर
सद्गुरु लक्ष्मण गंगा तटपर
स्थान विशेष का करते निरीक्षण।



अपने करकमलों से चुन चुन
सज्जाद्रव्य श्री सत्गुरु तनमन
अस्थिकलश दिव्याशिष्या का
यह था अभूतपूर्व उदाहरण।



सत्गुरु श्री लक्ष्मणदेव की
सत् शिष्या के अस्थिकलश से
हरि की पौढ़ी हरिद्वार की
आज पुनीत सुर भूमि बनी धन्य।

दायित्व का निर्वाहन किया। यह नामावली वास्तव में इनके दिव्य गुणों का वह निर्मल दर्पण है जिसमें साधक अपने स्वात्मप्रतिबिम्ब की झलक अनायास प्राप्त कर सकता है। कहा है कि गुरु नामावली का अभ्यास गुरुमन्त्र दीक्षा के अभ्यास के समकक्ष है और सद्गुरु की महानता की बारंबार स्मृति दिलाने में सक्षम है। अतः इस नामावली की निजी विशेषता है।

स्मृति के अन्तिम क्षण

अपने जीवन में घटी विस्मयावह घटनाओं के फलस्वरूप देवी जी की गुरुभक्ति अपना संयम खो बैठी थी और पूर्णरूप से साधना में लीन होकर बौद्धज्ञान का अर्जन पौरुष ज्ञान के साथ-साथ करने लगी। देवी जी के इसी अटल और अनन्य भाव के सामने गुरुवर्य की श्रद्धा भी दिन-प्रतिदिन बढती जाती थी। आकस्मिक व अप्रत्याशित मेघाडम्बर यदि कभी ढ़ांपने का साहस करता तो मेघमाला से उद्गत रवि किरणों से वह ओझल होता था। परिणामस्वरूप जीवन के अन्तिम चरण में सन् १९९१ के जनवरी मास में शारीरिक अस्वस्थता के कारण आश्रम से इन्हें निकलकर उपचार के लिए जम्मू जाना पड़ा जहां फरवरी मास में इन्होंने वह गति प्राप्त की जिसके लिए आजन्म कठिन तपश्चर्या की थी। गुरुवर्य ने इनकी जीवन लीला का विराम सहर्ष मनाया और अपने हाथों से और्ध्व दैहिक क्रिया कलाप का समायोजन किया।

यह दृश्य स्वयं में अभूतपूर्व और अलौकिक था क्योंकि आजतक की स्मृति में शिष्य के लिए किसी गुरु का इस प्रकार का उपक्रम देखने को नहीं मिला था। इस व्यवहार से इस सत्य की पुनः स्थापना हुई कि गुरु के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले शिष्य का भी अपना स्वर्णिम अस्तित्व होता है जिसका परखी ईश्वर-स्वरूप जैसा पारखी ही हो सकता है।

यह गुरुशिष्य परंपरा में प्रथम स्वर्णिम क्षण था कि जब किसी

दैशिक गुरु ने अपने सच्छिष्य के लिए एक प्रभावशाली नवीन मन्त्र साधना का श्रीगणेश किया हो और साधकों में उसे प्रचरित कर अनूठा स्थान उसे दिलाया हो, इतना ही नहीं एक नवीन देवी आरती की "शारिके शारिके शारिके" की संरचना कर सारी आद्या शक्तियों की प्रतिमूर्ति इसे मानकर जनमानस को झकझोरा हो एवं महनीय पदवी पर अपनी शिष्या को समासीन कर गुरुशिष्य इतिहास में उन्होंने एक नया अध्याय जोड़ा।

आश्चर्य की बात है कि जब देवी जी का नानापुष्प विभूषित विमान परम सत्य से एक होने के लिए प्रस्थान करने लगा तो वह दृश्य अभूतपूर्व था। गुरुवर्य अर्थी के आगे आकर प्रकृतिस्थ शिष्या के कानों में गुरुमन्त्र से भी महत्तर मन्त्रफूंक कर जोर-जोर से कहने लगे कि घबराओ मत "मैं भी छः महीनों की अवधि में आपके ही पास आ रहा हूँ"। इन शब्दों में क्या चमत्कार था, क्या स्नेह का उद्वेग था, क्या स्नेहमयी ऊर्जा थी, क्या अविचल संकल्प शक्ति थी, क्या पावन स्मृतियों का रेखांकन था, क्या अखण्ड अनुराग और अटूट बन्धन था, इसका अनुभव अध्यात्मनिष्ठ सद्गुरु जैसा योगी ही कर सकता है।

संक्षेप में हमारी यह धारणा है कि देवी जी भोग और त्याग, समर्पण और विश्वास परहित भाव, सन्मार्ग दर्शन, अभिरुचि, भावुक गलदश्रु वात्सल्य क्षमता तथा अपनी संस्कृति और सभ्यता का गौरवान्वित प्रतीक थी। पराभाव प्राप्ति के ध्येय को, विभिन्न मार्गों, मतों, रीतियों और दर्शनों के सार को निचोड़ने के पश्चात् देवी जी ने अपने जीवन की साधना का अन्तिम लक्ष्य स्वीकारा था। उनका त्यागमय जीवन भारतीय नारियों के लिए आदर्श था। इस शताब्दी समारोह पर हम सबों की मनोकामना है कि उनका आदर्श जीवन जन-जन के लिए कल्याणकारी पथ प्रदर्शक और तत्त्वज्ञप्ति का संवर्धक और संपोषक बने। तथास्तु॥

श्री शारिकादेवी – एक अवलोकन

-अवतार कृष्ण गंजू
सोपोर - दिल्ली

अपने गुरुमहाराज प्रातः स्मरणीय स्वामी लक्ष्मणजू महाराज की असीम अनुकम्पा से मुझ नाचीज को देवी शारिकाजी के बारे में कुछ लिखने का यह उत्तम अवसर मिला है। गुरुमहाराज से प्रार्थना है कि वह इस लेख को हमारे गुरुपरिवार के लिये लाभान्वित बनायें।

देवी शारिका जी हमारे गुरुमहाराज की प्रधान शिष्या थीं और गुरु शिष्य के परस्पर भाव को समझने वालीं एक पुण्य एवं योगभ्रष्ट आत्मा थीं। इनका जन्म कश्मीर के एक अच्छे खासे श्रीमान के घर में हुआ, जिनको सोपोरी नाम से जाना जाता था। सोपोरीसाहब एक साधारण जीवन गुजर करने में रुचि रखने वाले महापुरुष थे और धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि रखने वाले महानुभाव थे। श्रीमान कशमीर के चन्द अच्छे खासे, खातेपीते, सदाचारी पण्डित घरानों में से एक माने जाते थे। घराना वैभवशाली था और ऐसे वैभव में भी प्रभु के स्मरण पूरे नियम अनुसार घर में करते रहते थे, जिसमें उनकी धर्मपत्नी उनको पूरा सहयोग दिया करती थी। साधु-सन्तों का भी इनके घर में आना जाना रहता था और उनकी सेवा करना ये अपना कर्तव्य एवं धर्म मानते थे। कहा जाता है और सत्य भी है, कि ऐसे ही श्रीमानों के घरों में योगभ्रष्ट आत्मायें जन्म लेती हैं, जहां उन आत्माओं को अपने पूर्व जन्म का अधूरा योग पूरा करने में कोई बाधा न डाली जाये या ना डले। तो शारिकाजी भी एक ऐसी योगभ्रष्ट आत्मा थीं कि ऐसे घराने में जन्म लिया जहां किशोर अवस्था से ही उनको अपने अभ्यास करने में कोई रुकावट या रोक -टोक नहीं हुई । योगभ्रष्ट आत्माओं

का श्रीमानों के घरों में जन्म लेने के विषय में, गीताजी में स्पष्ट वर्णन किया गया है जिसका प्रमाण गीताजी के अध्याय छः के निम्नलिखित श्लोक ४१ में दिया गया है।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।

अनुवाद – असफल योगी पवित्रात्माओं के लोक में अनेकानेक वर्षों तक भोग करने के बाद या तो सदाचारी पुरुषों के परिवार में या कि धनवानों के कुल में जन्म लेता है।"

तात्पर्य–

असफल योगियों की दो श्रेणियाँ हैं–एक वे जो थोडी उन्नति के बाद ही भ्रष्ट होते हैं दूसरे वे जो दीर्घकाल तक योगाभ्यास के बाद ही भ्रष्ट होते हैं। जो योगी अल्पकालिक अभ्यास के बाद भ्रष्ट होता है वह स्वर्गलोक को जाता है जहाँ केवल पुण्यात्माओं के लिए प्रवेश है। वहाँ पर दीघकाल तक रहने के बाद उसे पुनः इस लोक में भेजा जाता है, जिससे वह किसी सदाचारी ब्राह्मण के कुल में या धनवान् वणिक् के कुल में जन्म ले सके। ऐसे परिवारों में जन्म लेने वाले इन सुविधाओं का लाभ उठाते हैं और अपने पूर्व अधूरे रहे अभ्यास को आगे बढ़ाते हुए पूर्ण करके शिवमय हो जाते हैं।

तो ऐसी अल्पकालिक अभ्यास के बाद भ्रष्ट हुई योगी आत्मा देवी शारिकाजी थीं, जिन्होंने अपने पूर्व अधूरे अभ्यास को अपनी चाह के अनुसार पूरा किया और शिवमय हो गईं। अपने पूर्व जन्मों के पुण्य उदय होने के कारणवश गुरु भी ऐसे मिले जो स्वयं शिव थे अर्थात् शिव हैं। प्रातः स्मरणीय स्वामी लक्ष्मणजू महाराज, जो धरती पर स्वयं शिव अवतरित हुये, ने देवी शारिका को अपने गुरु मन्त्र से उज्जीवित किया। देवीजी अपने पूर्व जन्म के अधूरे अभ्यास के कारण अपने अभ्यास को गुरु मन्त्र की शक्ति से आगे बढ़ातीं गईं और स्वयं

को गुरु की सेवा में अर्पण किया। स्वामीजी महाराज के समय के व्यतीत होने के साथ एक महनीय आत्मा बनने लगीं। अपने आपको गुरु-शिष्य परम्पपरा की अग्नि समान परीक्षा में धकेल दिया और अपने गुरु महाराजजी की असीम अनुकम्पा से गुरु-परीक्षा में ऐसे उतीर्ण हुई कि ईश्वर स्वरूप कहने लगे शारिका-शारिका ही है कोई और न ऐसा है न बन सकता है। समय आने पर स्वामीजी आश्रम में अनुग्रहीत प्रसाद देने का भार भी देवीजी को सौंपते, उनका आसन भी लगवाते और बोलते थे शारिका प्रसाद बाँट रही है खुले हाथों से लेलो। ऐसा प्रतीत होता माने स्वयं स्वामीजी ही प्रसाद बाँट रहे हैं। आजकल के इस व्यवहारिक संसार में हर एक मनुष्य को किसी न किसी झटिलता का सामना करना पड़ता है। और दूर करने के लिये दैविक आश्रय लेना पडता है। मेरा दैविक आश्रय मेरे गुरु महाराज के श्रीचरणों मे होता था, और ऐसे अवसरों पर इशबर आश्रम जाकर गुरुचरणों में निवेदन रखता था। माननीय शिवस्वरूपजी समस्या सुनते, हँसते और अनुग्रहित प्रसाद देकर जटिलता को दूर कर देते। कभी कभी मैं धैर्य न पाते हुये सीधे स्वामीजी से न कह पाता तो देवी शारिकाजी को ही माध्यम बनाता और वे स्वामीजी महाराज से मेरी समस्या कहतीं और तत्क्षण अनुग्रह हो जाता। इसी प्रकार गुरु महाराज के पास जाकर दो बार स्वामीजी ने शारिकाजी को ही हँसते हुये बोला कि आप ही प्रसाद देदो, मैं चुप हो गया। देवीजी ने गुरु महाराज की, आज्ञानुसार मुझे प्रसाद दिया और मैं प्रसाद लेकर घर पहुँचा तो जिस समस्या के समाधान हेतु प्रसाद लाया गया था वह तुरन्त मिल गया और परिवार में सबने देवीजी को मन से नमन किया। गीता जी का निम्नलिखित श्लोक देवी शारिकाजी के चरित्र का पूर्ण वर्णन करता है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(अध्याय ७, श्लोक १८)

अनेक जन्म-जन्मान्तर के बाद जिसे सचमुच ज्ञान होता है वह भगवान को (मुझको) समस्त कारणों का कारण जानकर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ होता है। तो देवी शारिका जी को भी यह ज्ञान इस जन्म में ही हो गया था कि भगवान ही समस्त कारणों के कारण हैं, उनको यह बोध हो गया था कि आत्म साक्षात्कार अर्थात स्वरूपसाक्षात्कार का चरम लक्ष्य भगवान् ही हैं, शिव ही हैं और इसी पथ पर चलती चलती गुरुकृपा से शिवमय हो गयी, शिवयोगिनी बन गई और शिवधाम (गुरुधाम) को चली गई।

ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय

"जय गुरुदेव"



पूज्या श्री शारिका देवी जी

-राज दुलारी कदलबुजू

सत्य स्वरूप को पाना या खोजना इतना ही दुर्लभ है जितना नश्वर को शाश्वत मोक्षधाम पहुँचाना कठिन है। किन्तु असम्भव नहीं है। यह सब पूर्व काल के सन्त, फकीर, सूफी, मलँग हमें बतला के गये हैं। सत्य की सत्ता को समझना सचमुच तलवार की धार पर चलना है। इस संसार में कुछ एक जन अपने आप को खोजने आते हैं। वह संसार में रह कर भी जगत से भिन्न होते हैं। वास्तव में उन की जीवन शैली साधारण जन से अलग होती है। वह तो जन्मजात ही त्यागी तथा वैरागी होते हैं। धीरे-धीरे जब वह संसार की वृत्तियों से भागते हैं, लोग समझने लगते हैं ये सन्त जन हैं। प्रभु के पथ पर चलना कुछ विरलों का ही काम है। प्रभु का मार्ग सत्य का साधन है। इसे धारण करना या मनत्याग के अपनाना ही केवलमात्र प्रण है। मैं स्वयं इस पथ की पथगमिनी शायद जन्मजात ही रही हूँ। बेशक गृहस्थी हूँ। मेरा परिवार है। मैं संसार में रह कर कुछ विशेष खोजती हूँ। मुझे स्वयं भी इस का ज्ञान नहीं है। मैं किस की दीवानी हूँ। वास्तव में सत्य के पथ का कोई माप-तौल नही है। इधर केवल अपना शीश कटवा कर ही नमन स्वीकार होता है जिस को वन मन्दरों में जीव खोजने जाता वह तो हमारे भीतर ही साक्षी बन कर विराजमान हैं। अतः बाह्य रूप से सब त्याग कर, यानी अपना देह भाव भुला कर ही वह प्राप्त हो सकता है। वास्तव में जो विशेष जन ईश्वर की सत्ता से यहाँ जन्मते हैं वह सकाम में भी निष्काम रहतें हैं। एक शताब्दी से पहले काश्मीर प्रान्त श्रीनगर में एक अद्भुत कन्या का जन्म किसी सोपोरी खानदान

में ब्राह्मण पँडित घर में हुआ। इन का नाम घरवालों ने शारिका देवी रक्खा। हमारे काश्मीर श्रीनगर में एक पहाड़ी का नाम हारी पर्वत है। वहाँ पर देवी शारिका भगवती का विशेष स्थान है। हम सब कश्मीरी वहाँ परिक्रमा के लिए जाते हैं। कालान्तर में यह अद्भुत कन्या बस गुप्त साधक दिखने लगी। इन्हें बचपन में गुरुदेव का संग तथा अनुग्रह हुआ। काश्मीर के प्रसिद्ध सन्त ब्रह्मचारी स्वामी लक्ष्मण जू रैना इनके गुरुदेव रहे है। इन का गुरु देव के सँग अद्भुत सँगम था। गुरु अगर आकाश थे तो यह उन की सीढ़ियाँ रही हैं। श्री शारिका जी शैवमत की साधिका थी। त्रिकशास्त्र की पारंगता रही हैं। यह सन्तों में शिरोमणि गुप्तरूप से रही हैं। मेरी मुलाकात १९६६ मई में इन से गुरु आश्रम में हुई। ऐसा लगा सफेद चादर ओढ़े आकाश की सीमा सिमटी हुई है और राम दरबार की हनुमान हैं। यह सबूरी के वस्त्र पहन के, फकीरी के बाज़ार में विचरण करती रहीं। यहाँ तक गुरुदेव से पहले ही देह त्याग के उन का पथ परमधाम तक निहारती रही थी उन पर प्रकाश डालना तो सागर को गागर में समेटना है मेरी श्रद्धा जो उन की थी वह अभी कभी डगमगाई नहीं। उन को मेरा शत शत नतमस्तक प्रणाम है।



योगिनी सुश्री शारिका देवी जी

—कन्हैयालाल कौल, चण्डीगढ़

चित-रूपी स्वच्छन्द एवं आनन्द के सागर से अलौकिक इच्छा रूपीलहर स्वतः ही उभर कर खडी आई और इच्छा लहर से प्रभूत पदार्थ-राशि का प्रसार मातृ स्वरूप से सृष्टि संहार की प्रक्रिया के रूप में विकसित होकर अस्तिव में आया। यही अबाध एवं स्वच्छन्द इच्छा-रूपी लहर मां राधिका जी के गर्भ रूपी तट से जाकर टकराई और यही महाशक्ति करुणाशील और परित्राण करने वाली माँ अपने भक्त जनों को रात दिन सृजन और सँरक्षण के लिए शक्ति रूप श्री शारिका के अवतार के रूप में स्वतः अवतीर्ण हो कर इस जगत में प्रकट हुई। इसी की समीक्षा करते हुए सत् गुरुमहाराज ने भी शारिका देवी जी के विषय में कहा।

परभैरव लीनी भूता आत्मशक्ति श्रीशारिका देवी।
ॐ परभैरव लीन्यै परा शक्त्यै श्रीशारिका देव्यै नमो नमः॥

श्री रामेश्वर झा जी ने भी शारिका देवी जी के बारे में कहा

काशमीरिकी त्वं ननु शारदासौ,
क्षीरे वसन्ती शुभदा भवानी
त्वं देवि नित्यं हरि पर्वतस्था।
जनस्य दुर्गातिहरी च दुर्गा॥

इस प्रकार यह सिद्ध किया कि देवी शारिका माँ साक्षात् श्री देवी शारिका जी का स्वरूप धारण करके इस धरती पर जन कल्याण के लिए प्रकट हुई।

बाल्यकाल से ही अल्प-भाषण करना इनका स्वाभाविक गुण था। स्वनाम धन्य भगवती शारिका जी के विषय में जितना भी कहें

कम है। आजीवन तपस्या की भट्ठी में तपकर इन्होंने अपने जीवन को स्वर्णमय बनाया था। शम, दम, व्रतरूप नियम के सांचे में ढ़लकर इनका सम्पूर्ण जीवन निखर उठा था। बचपन से ही प्रभु पर अटूट विश्वास, प्रेम, भक्ति, अनुराग, स्नेह, आस्था, लगन तथा तत्परता के भाव उभरे थे। इन्हीं मनोभावों की साकार-मूर्ति शारिका जी थीं। जिन महानुभावों को देवी जी के साथ उठने बैठने का सुअवसर मिला है वे उनके संपर्क का मूल्यांकन स्वयं कर सकते हैं। सदा अभ्यास-परायण रहना इनका व्रत था। अल्पाहार करना इनका निजी स्वभाव था। गुरुदेव के प्रति प्राणपन से शरणागति का भाव इनका विशेष गुण था।

शक्तिपात वशात् देवि नीयते सदगुरुं प्रति।
दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते कर्मवासना।।

इस तन्त्रोक्त उक्ति का ज्वलन्त उदाहरण देवी शारिका जी थी। बाल्यकाल में ही इन्हें घर पर ही स्वयं शिवतुल्य ईश्वर-स्वरूप जी मिलने आये। बातों-बातों में इन्हें दृष्टि-दीक्षा करके कृतार्थ किया। देवी जी को इस दीक्षा का फल दिनों में मिल गया। वे अहर्निश सुध-बुध भी खो बैठीं। घंटों विमर्श के आनन्द में विभोर रहने लगी। अपनी युवावस्था में पदार्पण करने पर तो ये पूर्ण रूप से गुरु-चरणों में समाविष्ट हो गई थीं। इनकी सम्पूर्ण जीवनी का उल्लेख 'भावार्चन' नामक पुस्तिका में विस्तार-पूर्वक किया गया है।

इनके सम्भाषण में प्रायः हास्य-रस की पुट रहा करती थी। बात धीमे से कह देती थीं। सुनने वाला हंस-हंस के लोट-पोट हो जाता था। स्वयं बात कह कर गंभीर हो जाती थीं। गुरुवर्य को यह साक्षात् शंकर के तुल्य मानती थीं। कभी भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन देवी जी ने नहीं किया है। श्रद्धा, भक्ति और वात्सल्य इन में पूर्ण रूप से प्रतिफलित हुए थे। इनकी शान्त मूर्ति को देखकर ही मन, चंचलता के स्वभाव को भूल जाता था और यही चाहता था, घंटों इन्हीं के पास

बैठा रहूं। गुरु-आज्ञा कहीं हाथ से न निकल जाये इस कठिन तपस्या का पालन उन्होंने आजीवन किया और इस में वह सफल भी रहीं। भगवान् की भांति अपने वास्तविक रूप को छिपाने में यह अति प्रवीण थीं। अहर्निश अभ्यास- परायणा रहती हुई भी, ये साधरण मानव की भांति व्यवहार करती हुई दिखाई देती थीं। शारिका जी एक अत्युच्च व्यक्तित्व की मालकिन थीं। उनके आचार-व्यवहार एवं विचारों में उनका आध्यात्मिक चरित्र दिखाई देता था। इनके जीवन के साथ अनेक चमत्कार जुड़े हुये हैं, यद्यपि इन्होंने कभी इनको अपने जीवन में अधिमान नहीं दिया प्रत्युत चमत्कारों वा करिश्मों से उनको घृणा थी। वह ऐसी प्रक्रियाओं को एक मदारी का कार्य समझती थी। उनके अनुसार बहती नदी को रोक लेना, भड़कती हुई अग्नि को बुझा देना, आकाश गमन करना, काष्ठ-धेनु से दूध दुहना—ऐसी सभी हरकतें कपट चरित होती हैं। वह समय देखकर कभी अभ्यास में नहीं बैठती थी। वह कहा करती थी भला प्यास के समय कोई घड़ी देखकर जल पीता है। इसी भांति प्रभु से मिलना की पिपासा के लिए समय देखना बेकार है इस प्यास की निवृत्ति तो अभ्यास की ताक लगाने से ही होती है। स्मरण रहे कि सुश्री शारिका देवी योगिनी होने के साथ-साथ आशु कवयित्री भी थी। इनका कवित्व परमार्थ के अनाध्रात पुष्पों की महक को ले कर उन्मत बनाता था। इनके भाव परावाक् में अवस्थित विचार माला के स्फटिक दाने होते थे। शक्तिपात का ज्वलन्त उदाहरण देवी शारिका जी साक्षात् थीं। अपने गुरुदेव रूपी ज्ञान स्तम्भ के चारों ओर मंडराते-मंडराते देवी शारिका जी ने अपना भौतिक शरीर न्यौछावर करके योगिनी के परम पद को प्राप्त किया। ऐसी पर-वैराग्य योगिनी को हम सबों का शत्-शत् प्रणाम।



देवी मां

—जय किशोरी कौल
दिल्ली

मैं क्या कहूँ, क्या वर्णन करुँ, मैंने उनको बहुत कम देखा था। इतना ही जानती हूँ, वह सदा चुप रहती थी, सफेद साड़ी में, छोय सा मुंह, घने बाल और हंस मुख चेहरा। हम उनको प्रेम और आदर से दिदा प्यारी बुलाते थे। हमारे परिवार और सोपोरी परिवार के अच्छे गहरे सम्बंध थे। पर मैंने उनको कम देखा था। एक बार मैंने मां से वूछा कि यह दिदा प्यारीजी अलग थलग क्यों बैठती हैं और सदा चुप ही रहती हैं। उन्होंने मुझे कहा कि यह साधना करती हैं, गुरु धारण किया है, जिनका आदरणीय नाम श्री लक्ष्मण जी है। अब इन्होंने निशात में आश्रम बनाया है, और वहाँ ही रहते हैं। दोनों के अलग आश्रम हैं। मैंने मां से कहा किसी दिन मुझे भी ले जाना। परन्तु हमारी मां कहीं किसी आश्रम या साधु के पास नहीं जाती थी पर केवल खीरभवानी और हनुमान मंदिर। गीता रामायण आदि पढ़ती रहती थी। हमारे पिताजी ने उनको जल्दी छोड़ दिया था, और उसने पूछा था अब मैं क्या करुं, उन्होंने जाते हुए बोला, भगवान् को पकड लो और वह अंतिम साँस तक ऐसा ही करती थी। इसलिए मैंने उसको कभी देवी जी के आश्रम जाते हुए भी नहीं देखा।

कभी-कभी मैं अपनी बहन या किसी और के साथ चली ही जाती थी। वहां 'देवी मां' को उसी रूप में 'छोटा सा चमकता हुआ मुँह' सफेद साडी, और जटाओं की भरमार कैसे वर्णन करुँ वह रूप अद्भुत और आकर्षक कितना था। कभी उनके साथ बात करने की हिम्मत ही नहीं हुई। स्वामी जी भी मुझे जानते थे मैं उनको चरण-वंदना करती

थी और बह बोलते थे 'जन्मदिन' पर जरूर आना। तो मैं जन्मदिन पर जाने लगी। बहुत आनंद आता था। अपने गुरुदेव के जन्मदिन पर देवी जी अति प्रसन्न और उत्साहित होती थी।

मैं भूल नहीं सकती जब मैं जाने के लिए आज्ञा लेने जाती थी, चरण स्पर्श करती थी, उनके हाथ मुझे प्रसाद देते रुकते ही नहीं थे। आखिर हमारी 'दिदा प्यारी' जी जो थी।

कृपालु दयालु
सदानंद दायिनी।

जय जय जय हो मां !



इष्टदेवी श्री श्री शारिका जी का साक्षात् दिव्य मातृभाव

—कन्हैयालाल कौल
डी.एल.एफ., गुड़गाँव

(मूल अंग्रेजी लेख का अनुवाद।

अनुवादिका—प्रो० मोहिनी कौल, डी.एल.एफ., गुड़गाँव)

इसवर्ष हम अत्यन्त हर्ष और उल्लास के साथ अपनी 'इष्ट देवी' दिव्य स्वरूपा देवी जी के जन्म-शताब्दी के समारोह को मनाने में पूरे तन-मन से संलग्न हैं। इस अत्यन्त मनमोहक कार्यक्रम में भाग लेने वालों का देवी जी के प्रति अनुराग और निष्ठा भाव मन को आह्लादित करने वाला है।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि अपने विवाह के अक्सर पर मुझे जो परम पवित्र और आनन्दविभोर करने वाला उपहार अपने ससुराल वालों से प्राप्त हुआ वह था देवी जी के साथ दिव्य एवं सत् चितानन्दमय सम्पर्क। बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक के अन्तिम चरण से मैं देवी जी के परम पवित्र एवं परम गुह्य स्वरूप का लाभ प्राप्त कर रहा हूँ।

कुलं पवित्रं जननी कृर्ताथा

उनके कृपापूर्ण अन्तर्मुखी स्वरूप के दर्शन मात्र से मन एकरस ब्रह्म-तत्व में डूब जाता था।

मेरे विचार से वह न केवल पवित्र नारीत्व का दिव्य स्वरूप ही थी, न कोई जीवन-रहस्य की परम शिखा या संत-साधक ही थी अपितु वह विधि का एक अद्भुत चमंत्कार थीं जिनका स्वभाव एवं प्रभाव दिव्य एवं अलौकिक था। उनकी विशुद्ध आत्मा सदैव प्रेम, उदारता एवं करुणामय भाव से परिपूर्ण थी।

जब मैंने उनके दिव्य-स्वरूप का प्रथम बार दर्शनमात्र किया, मैं उनके

दिव्य तथा संतुलित एवं सम्पूर्ण भव्य व्यक्तित्व से बहुत ही प्रभावित हुआ। उनमें मैंने योग, ज्ञान, भक्ति एवं कर्म के सर्वोच्च भावों का सामंजस्य पाया। मैं आत्म विभोर हो गया और मन ही मन में उन्हें अपनी निष्ठा भगवती, दिव्य माता के रूप में स्वीकार करके अपने आप को उनका "तस्याः दासः सदाऽहम्" मान लिया।

वह शक्ति-स्वरूपा ब्रह्ममयी माँ अपने उदारता पूर्ण दिव्य वैभव द्वारा सबको आकर्षित करती रही। कोई उनके अन्तर्मुखी साधना से प्रभावित हो या न हो, मुझे उसकी चिन्ता नहीं उनका चरित्र पवित्रता, निष्ठा और महान इष्ट-भक्ति का उज्ज्वलतम प्रतीक है।

पवित्रं चरितं यस्याः पवित्रं जीवनं तथा पवित्रतास्वरूपिण्यै तस्यै कुर्मो नमो नमः।

उनकी स्नेहपूर्ण स्मित तन-मन को आनन्द वैभव में विभोर कर देती थी। वह वैराग्य एवं उदारतापूर्ण लोकहित कामना की मूर्तिमान् स्वरूप थी। इस दृष्टि से उनका पावन चरित्र अतुलनीय है।

परम पूजनीय स्वामी जी की आध्यात्मिक साधना और ब्रह्मस्वाद सम्पूर्ण व्यक्तित्व हम जैसे साधारण जनों की बुद्धि से परे होने के कारण असाधारण तथा कल्पनातीत था अतः ऐसे वातावरण में देवी जी की सहानुभूतिपूर्ण कृपा हमारे लिए सहज एवं दिव्य शीतलता प्रदान करती थी। स्वामी जी स्वयं परम शिव-स्वरूप थे और देवी जी शक्तिस्वरूपिणी ज्योर्तिमय दीपक थी जिसके प्रकाश से हम स्वामी जी के दिव्य व्यक्तित्व को सहज रूप से समझ सकते थे। स्वामी जी का विराट् एवं अलौकिक व्यक्तित्व केवल देवी की अनुरागमयी शक्ति-संकल्प का विषय था - 'देहस्थोऽपि न देहस्थः।' अतः देवी जी ने अपने स्वइच्छित वैराग्य एवं साधु भाव द्वारा जो प्राप्त किया था वह केवल उनके जैसे परम आत्मज्ञानियों को ही उपलब्ध होता है।

देवी जी का सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन स्वतः प्रेरित एवं आकर्षक

है। उनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण मानवता के प्रति संवेदना से परिपूर्ण एवं आसक्ति भाव से पूर्ण था। सब से प्रेम तथा शालीनता तथा भद्रता से मिलना यह उनका स्वाभाविक तथा ईश्वर प्रदत्त गुण था। वह मातृभाव से सब के लिए प्रेरणादायिका थी। देवी जी निस्वार्थ प्रेम, विनीत भावना, नम्रता, पवित्र चरित्र तथा आत्म-नियन्त्रण की प्रतीक थी। वह एक विभूति थी, जीवन्मुक्त थी, राग-अनुराग के साथ विराग की और त्याग की प्रतिमूर्ति थी। उनकी इच्छा शक्ति, मानववादी भावना तथा सामंजस्य की पूर्णता स्वामी जी के लिए प्रेरणादायक थी। उनकी दैवी शक्ति उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करती है।

अपनी प्रतिष्ठित आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्ति में दोनों एक दूसरे के पूरक थे।

कश्मीरी शैव दर्शन के अनुसार भगवान शिव चित् शक्ति, आनन्द शक्ति, इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण है अतः देवी जी स्वामी जी की शिव-साधना के अन्तर में शक्तिस्वरूपिणी तथा विद्युत-गृह थी।

उनमें असाधरण प्राकृतिक तथा ईश्वर प्रदत्त ग्राह्य शक्ति थी जिसके बल पर वह स्वच्छ मन एवं रससिक्त आध्यात्मिक शुद्धता एवं सौन्दर्य का जनमानस में संचरण करती थी। उनमें मातृभाव का स्पष्ट अवलोकन उनकी आध्यात्मिक एवं सामाजिक कार्यशीलता में प्रतिलक्षित होता था।

वह एक मन एवं एक भाव से अपनी स्थिर बुद्धि द्वारा तथा ईश्वर प्रेम और मानवीय प्रेम से सबसे सम्पर्क रखती थी। कहीं द्वैत भाव या अस्थिर भावना का संचरण नही था। अतः मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार वे विश्वजननी तथा जगन्माता के पद पर आसीन है।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽ त्यर्थमहं स च मम प्रियः।।
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ७, श्लोक १७-१८

भगवान् कृष्ण ने भी अनन्य प्रेम भक्ति से सम्पूर्ण ज्ञानी को अति उत्तम भक्त माना है। तत्त्वार्थी तथा स्थिरबुद्धि सम्पन्न भक्त को अत्यन्त प्रिय भक्त सिद्ध किया है।

देवी जी श्रद्धाभाव से सम्पन्न अत्यन्त अद्भुत योगिनी थी जिन्होंने अपनी बाल्यावस्था योग की सर्वश्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर जगत् धात्री के स्थान को प्राप्त किया है। श्रीमद् भगवद्गीता जी के अध्याय ६ में –

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥"

देवी जी मातृत्व के महान् एवं गौरवपूर्ण व्यक्तित्व से परिपूर्ण थी। वे मृदु-भाषी, सरल शुद्ध-स्वच्छ तथा निर्मल एवं अनासक्त माँ की मूर्ति थी उनका व्यवहार सबके साथ समान था। समरसभाव से सबके प्रति ममतामयी भावना से बोलना, दुःख दर्द का अपनी मृदुल स्मित से निवारण करना उनका स्वाभाविक गुण था। किसी के प्रति दुर्व्यवहार उनके विचार या आचार के अनुकूल नहीं था। सबके लिए प्रेमभाव तथा संवेदना से व्यवहार करना उनके स्वभाव में था। उनके अतिमानवीय गुणों तथा अलौकिक दिव्य शक्ति की मैं बार-बार सराहना करता हूँ और तन-मन से उनके मातृभाव से प्रभावित हूँ।

उनके दिव्य प्रेम तथा आशीर्वाद को मैं प्रायः उनके जन्मदिन के अवसर पर प्राप्त कर आह्लादित होता था और उनका विशेष प्रसाद प्राप्त करता था। वह मेरे लिए एक दिव्य विभूति थी। अपने समक्ष हमारा भारतीय इतिहास कई विशिष्ट महिलाओं के अति अलौकिक कृत्यों से भरपूर है। जिन महिलाओं ने अपने आत्मिक-बल से राष्ट्र को गौरवान्वित किया है। उनमें मेरे विचारानुसार आध्यात्मिक साधना क्षेत्र में देवी जी अग्रणीय है।

मैं निस्संकोच भाव से उनको शारदा देश की बीसवीं शताब्दी की सन्त महाराज्ञी कहकर कौमारी रूप में उनके मातृभाव की पवित्रता शुचिता और सम्पूर्ण श्री से सम्पन्न व्यक्तित्व की सराहना करता हूँ। वह शान्ति की दूत थी। उनका व्यक्तित्व सम्पूर्णतया आत्मिक शांति एवं दिव्य ज्योति स्वरूप है। वह साक्षात 'परा विद्या' स्वरूपा है दिव्य अनुभव के साथ-साथ उनके शैव-दर्शन तथा वेदान्तिक तत्त्वों के समन्वय से परिपूर्ण उनका व्यक्तित्व सम्पूर्णतया ज्योति स्वरूप है।

देवी जी का व्यक्तित्व बहुमुखी है। शिवयोगिनी के साथ-साथ उनमें भारतीय संस्कृति एवं उत्कृष्ट साहित्य की विचारधारा भी पूर्णतया परिलक्षित होती है। आचार और विचार शतशः उनका व्यक्तित्व भारतीय मातृत्व से ओतप्रोत था। मानववाद समानता तथा समरसता के साथ-साथ धैर्य एवं कृतज्ञता उनमें भरपूर थी। वे संवेदन शीला थी। तन से दुर्बल लगती थी परन्तु उनकी मानसिक शक्ति समस्त जनों के मन को आह्लादित करती थी। अपने अतिमानवीय बुद्धियोग और ज्ञानयोग से वह सर्वदा विस्मृत रहती थीं।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

श्रीगीता जी, ४.३८

उनके जीवन में श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, ज्ञान एवं आत्म विश्वास का समन्वय था। अतः वह सभी प्रकार से ज्ञान, भक्ति एवं योग की उच्चशिखा को प्राप्त कर चुकी थी।

देवी जी में दैव के लिए अनुराग और सांसारिक समृद्धि से विराग था। उनका ऐश्वर्य एवं सम्पदा उनकी दिव्यात्मा थी। वह और स्वामी जी एक दूसरे की छत्रछाया में दिव्यानुभव करते थे। पग-पग पर वह स्वामी जी की रक्षा-कवच थी और स्वामी जी उनके इस हार्दिक अनुराग को शिरोधार्य करते थे। उनका यह अनुराग सम्पूर्णतया आध्यात्मिक था जिसमें संवेदना

का भाव भी था। वह वैरागी थी परन्तु मानवीय भी थी। उनमें वाक् चातुर्य की अपेक्षा सहज सुंतुलित मानवीय गुणों के लिए आसक्ति भी थी। उनकी मौन-साधना और स्मित भक्तों के लिए मानसिक शान्ति प्रदान करती थी। अतः सभी अपने आप को भाग्यवान समझते थे। जिन लोगों को उनके शुद्ध अति अलौकिक स्वरूप को पहचानने में मानसिक कष्ट होता था उनके प्रति उनके मन में क्षोभ नही था। वे समदर्शी थीं। आत्मज्ञानी तथा असाधारण मानसिक शक्ति से सम्पूर्ण :-

यस्य सर्वे समारम्भः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः॥

श्रीमद्भगवद्गीता १८

कई दशकों से ईश्वर-आश्रम से जुड़ने पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्वामी जी स्वयं उच्चकोटि के राज ऋषि थे और देवी 'भैरवी ब्रह्माणी' थी।

स्वामी जी सिद्ध योगी थे और देवी जी दिव्य पवित्रता से सम्पूर्ण शान्ति तथा आत्मिक सौन्दर्य को वहन करती थी। वे स्वभाव और प्रभाव से सिद्ध योगिन थी।

हमारा भारतीय इतिहास मीरा, लल्लेश्वरी, रूपभवानी आदि संत महिलाओं की विचित्र एवं अलौकिक गाथाओं से भरपूर है और हमारी देवी जी भी बालयोगिन थी अतः अपनी महान् सिद्धि को प्राप्त करके 'माहेश्वरी' का स्थान प्राप्त कर चुकी हैं।

श्री भर्तृहरि ने अपने 'नीति शतक' में चार प्रकार के मानवों का वर्णन इस प्रकार किया है :-

१ सत् पुरुष, २ सामान्य, ३ मानव राक्षस, और ४ दूसरों का सर्वनाश करने में जो प्रसन्न रहता है। देवी जी का स्थान उन सत्पुरुषों में है जो कि सब में उस दिव्य सत्ता का आभास पाते हैं। वह महान है, सात्त्विक है और एक दिव्य विभूति है।

मुझे ऐसा आभास होता है कि पूर्वजन्मों के पुण्यकर्मों के फलस्वरूप

ही हम देवी जी तथा उनकी छोटी बहिन पूज्य प्रभा जी के आशीर्वाद तथा सद्भावना के पात्र बन सके।

स्वामी जी एवं देवी जी के आशीर्वाद को प्राप्त करने हमारी व्यासपीठासीन पूजनीय प्रभा जी अपने सत् प्रयत्नों तथा ईश्वर-प्रदत्त् बुद्धियोग से ईश्वर आश्रम में कश्मीर-शैव-दर्शन को परम्परागतरूप से प्रतिष्ठित कर रही है। श्रीस्वामी जी तथा सुश्री देवी जी इस अतुलनीय शिक्षा, शिक्षण तथा त्रिक-शास्त्र की पताका को अपनी दिव्य वाणी तथा लेखनी से फहराती रहे यह हमारी कामना है।

महान् सिद्धों, योगियों और उनकी परम्परागत दिव्य वाणी को वेद वाणी मानकर ईश्वर-आश्रम के संतों का हम सब अनुरागियों को आशीर्वाद प्राप्त हो, यह मेरी कामना है।

मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि देवी जी हमारा कल्याण करने में संलग्न है।

"जन्मदायिनी दिव्य स्वरूपा देवी माँ।
जगतधात्री विश्वजननी श्री शारिका माँ।।
अन्नपूर्णा श्री सरस्वती वरदायिनी माँ।
श्री सम्पत्ति सुख प्रदायिनी माँ।।
अवर्णनीय अनिर्वचनीय स्वल्पभाषी माँ।
अहेतुकी कृपादात्री अनासक्तिपूर्ण माँ।
स्वभावतः सर्व कल्याणमयी माँ।
कर दो, भर दो, करुणा, प्रेम समभावना माँ।
सतोगुणमयी योग साधना पूर्ण भव्य माँ।
चिन्मयानन्दमयी समरसता सम्पूर्ण माँ।।
जगतजननी भर दे दिव्य ज्योति से माँ।
नमन कर देखूँ तुझ को अति पावनमयी माँ।।

—कौल परिवार की भेंट

परभैरवलीन्यै पराशक्त्यै श्रीशारिका देव्यै नमो नमः

लेखक - योगीन्द्र तिक्कू
(देवी जी के सत् शिष्य)

मैं कितना अक्षम हो जाता हूँ जब मुझसे कहा जाता है कि मैं गुरुदेव, साक्षात् शक्ति स्वरूपा देवी शारिका जी के विषय में कुछ लिखूँ। मेरी स्थिति उस बालक के समान हो जाती है, जिसको अभी अक्षर ज्ञान भी न हो और उसके हाथ में लेखनी पकड़ा दी जाए। जो देवी स्वयं अपने जीवन में, अपनी वास्तविक उच्च स्थिति को परदे में छिपाती रहीं, उनके विषय में मेरी वाणी, वाचाल हो भी तो कैसे? ऐसे में मेरी स्थिति उस मूक की भांति है, जो मीठे का स्वाद नहीं बता सकता। अथवा कहें तो तुलसी दास जी के कथनानुसार "गिरा अनयन, नयन बिन बानी।"

जिन भाग्यशाली भक्तों ने देवी शारिका जी की कृपा के वरद् हस्त का, अपने शीश पर अनुभव किया है, वह जानते हैं कि शिव व शक्ति में कोई भेद नहीं। तथा वही शक्ति, गुरु रूप में अनुग्रह करती है और कर रही है। स्वरूप ज्ञान का और कोई उपाय नहीं। वह निरुपाय है। शिवसूत्र के अनुसार भी एकमात्र–"गुरुरुपायः"। पथिक, मार्ग, गन्तव्य, मार्गदर्शक, हर रूप में आप गुरु।

पराशक्ति श्री शारिका देवी, जब तक शारीरिक चोला पहन कर, संसार में रहीं, मुझ समान तुच्छ प्राणियों पर कृपा की फुहार बरसाती रहीं। हम सदैव उनके आशीर्वाद तथा ममता की बौछारों से सराबोर रहे। जब गुरुदेव देवी जी, परभैरव में लीन हुई, वह हम सब के भीतर ही समा गई। क्योंकि शक्ति बिना तो हमारा अस्तित्व ही नहीं।

हाथ चले ना जिह्वा, जब तक शक्ति नहीं काया में,
शक्ति की ही डोर से बंध कर, जीव रमे माया में।।

इस समय भी मुझ पर तथा अनन्य भक्तों पर साक्षात् कृपा वर्षा करती हुई गुरुदेवी श्री शारिका देवी, हम से दूर कदापि नहीं। केवल स्मरण मात्र से ही, शरीर तथा मन, आनन्द रस से लबालब भर जाता है।

मैं, बारम्बार गुरुदेव शब्द का प्रयोग करते हुए अत्यंत हर्ष तथा गर्व का अनुभव करता हूँ। जैसा मैंने सुना है कि देवी श्री शारिका जी ने बहुत ही कम भाग्यशालियों को दीक्षा दान दिया था। जिनमें सभी महिलाएं थीं। परन्तु मैं ही एक ऐसा अपूर्व भाग्यशाली पुरुष हूँ, जिसके न जाने किन पूर्व जन्मों के कर्मों को देख कर, कृपा करके, मुझे दीक्षा दान दे कर, अपने चरणों में स्थान दिया है। मेरी अज्ञानता को न देख कर, मेरे एक ही निवेदन पर कृपा कर दी। अगले रविवार को जन्त्री मंगवाकर कहा कि इस दिन आ जाना। यह कृपा कैसे हुई, क्यों कर हुई, मैं नहीं समझ पाया।

मेरा परम सौभाग्य ही है कि जन्म से ही मैंने स्वयं को देवी जी के सान्निध्य में पाया। पारिवारिक संबंध थे। परन्तु मेरे मन में कभी भी पारिवारिक संबंध सा कोई भाव नहीं आता था। जब भी उनसे मिलता था तो एक गद्गद् भाव से हृदय भर आता था। कुछ वर्षों के लिए जब मैं विदेश में था, तो वहाँ से ऐरोग्राम पर पत्र लिखता रहता था। उत्तर भी प्राप्त करता था। एक बार तो आश्चर्य चकित रह गया, जब कश्मीर से उनका भेजा हुआ पत्र, मुझे सही सलामत, विदेश में मिल गया, जो कि ऐरोग्राम पर नहीं, परन्तु अन्तर्देशीय पत्र पर था। उस पर कोई टिकट नहीं थी। कृपा पर भला टिकट की क्या आवश्यकता है। आज भी वह पत्र मेरे पास है। गुरु कृपा, सब पर अनेकानेक रूपों में बरसती रहती है, केवल उसको समझने की ज्ञान शक्ति चाहिए। इसीलिए कहा गया है कि–"जानीह सोई, जेहि देहु जनाई।"

उनके समक्ष भी, मेरे मुँह से बोल नहीं फूटते थे, क्योंकि वैखरी देवी, तो स्वयं तात्त्विक चोला पहन मेरे सामने विराजमान थीं। आज भी मेरे शब्द, मेरे नहीं हैं, क्योंकि स्वयं मातृका शक्ति, देवी शारिका जी ही शब्दों में अवतरित हैं।

अतः, आज मैं उस अवसर को चूकना नहीं चाहता। प्रार्थना करना चाहता हूँ कि—हे देवी, आपकी असीम अनुकम्पा बनी रहे। मुझे ज्ञान अज्ञान के बंध से मुक्त करें। अपने अनुग्रह रूपी प्रकाश से, मेरे मनस पटल का तम नाश करें।

मेरा अपना कोई अस्तित्व नहीं है। भीतर बाहर जो कुछ भी है, मेरी गुरुदेव का ही स्वरूप है। वह आज भी शिशु की शांति, अपनी ममतामयी अंगुली पकड़ा कर चला रहीं हैं, और मैं आज भी उनके करुणामय, जलज चरणों का अनुसरण कर रहा हूँ।

दिखता है सर्वत्र विश्व पर, छवि उसमें गुरुदेव की है,
तात्त्विक पुतला चेतन दिखता, चेतनता गुरूदेव ही है ॥



श्रद्धांजलि

— पुष्पा कौल

एक शान्त सौम्य, स्मित मुखमुद्रा लिये श्वेत साड़ी में दिये की अकम्पित लौ की तरह, एक करुणामयी ममतामयी मूर्ति, स्वात्माभिमान और धर्मपरायणता से ओतप्रोत एक अपूर्व शान्ति का आभास कराने वाली सब के मानसपटल पर अंकित। यह है प्रातः वन्दनीया ब्रह्मवादिनी, परभैरवलीन सुश्री शारिका देवी जी।

सुश्री शारिका देवी जी स्वनाम धन्य स्वामी ईश्वरस्वरूप महाराज की सर्वस्वभूता प्रधान शिष्या थी। इनका जन्म श्रीनगर में सन् १९१३ मार्ग शुक्लपक्ष की द्वितीया को पं० जियालाल सोपोरी जी के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम राधिका रानी था। वे दोनों धर्मपरायण, सद्विचारों वाले भगवद्भक्त थे।

सुश्री देवी जी को बचपन से ही परमार्थ की ओर झुकाव था और शुचिता, पवित्रता और आत्मसंयम को निष्ठापूर्वक अपने जीवन में अपनाया। पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण बचपन से ही योग अभ्यास किया करती थीं। अतः १५ वर्ष की आयु से ही देवी जी परवैराग्य से विवश होकर स्वामी जी के पास अभ्यास सीखने के लिये आई। अतः उनकी अवस्था देखकर स्वामी जी महाराज ने उन्हें शैव दर्शन की दीक्षा दी। दीक्षा लेने से पूर्व देवी जी ने स्वामी जी महाराज से कहा कि मुझे ऐसी दीक्षा दीजिये जिसको मैं अपने गृहस्थ जीवन में निभा सकूँ। इस पर स्वामी जी महाराज ने कहा कि आपका विवाह तो भगवान् से ही चुका है। साधारण मानव आपका पति नहीं बन सकता तथा आजीवन ब्रह्मचारिणी बनकर रहना और देवी जी ने सहर्ष अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन किया और आ-जीवन ब्रह्मचारिणी रही और अर्हिनश

अन्तर्मुख रहने लगी।

कुछ समय बाद ईश्वरस्वरूप महाराज ने ईश्वर पर्वत के दामन में अपने लिये भवन बनया। देवी जी के पिता जी ने भी उसी के समीप आमने सामने मकान बनवाया। बस फिर क्या था। फिर वहाँ नियमपूर्वक अभ्यास और शैवदर्शन का अध्ययन और अध्यापन का काम चलता रहा। यदाकदा उनके सम्बन्धी जन भी वहाँ उनसे मिलने जाते थे। सुश्री देवी जी की छोटी बहन सुश्री प्रभा देवी जी, जो कि मेरी गुरुमाता भी है और जो अपनी प्रतिभा की प्रभा चारों दिशाओं में बिखेरती रहती है, भी वहाँ शैव शास्त्रों का अध्ययन करके अपने घर वापिस जाती थी। सन् १९४२ में उनकी शादी बड़ी धूमधाम से हुई थी। स्वामी ईश्वरस्वरूप जी भी आमिन्त्रत थे। कहते है कि स्वामी जी ने उसी समय भविष्य वाणी की थी कि यह दान (कन्यादान) वापिस आयेगा फिर कुछ ही समय के बाद उनके पति का आकस्मिक निधन हो गया। बाद में स्वामी जी ने उनको भी शैवी दीक्षा देकर शैवदर्शन का अभ्यास प्रारम्भ कराया। तब से दोनों बहनें नियमित रूप से गुरु महाराज की छत्रछाया में रहीं और अध्ययन के साथ-साथ पारमार्थिक सिद्धि के लिये भी अभ्यास करने लगीं।

देवी शारिका जी अभ्यास परायण भक्तिभाव में रहकर गुरु सेवा में लगी रहती थी। एक बार स्वामी जी महाराज ने ईश्वर आश्रम से फतेह कदल में स्थित 'मरबल' के मकान में आकर तीन मास के लिये मौनव्रत रखा। पौष का महीना था काफी हिमपात हुआ था। देवी, जी प्रति आठ दिन बाद अपने ईश्वर पर्वत के आश्रम से अपने साथ दो सेवकों को लेकर स्वयं दूध दही सब्जी फल आदि को गिरती बर्फ में पाँच मील चलकर ले जाया करती थी और शाम को वापिस अपने आश्रम पहुँच जाया करती थी। यह थी उनकी कठोर तपस्या और भक्तिपूर्ण सेवा भाव अपने गुरु देव के प्रति। यह बात मुझे स्वनाथधन्य मेरी गुरुमाता सुश्री प्रभा जी ने कही है।

कुछ समय बाद श्री ईश्वरस्वरूप जी ने ईश्वर पर्वत के दोनों आश्रम बेचकर निशात और गुप्तगंगा के बीच में इश्बर नामक स्थान में अपना आश्रम,बनवाया। यहाँ प्रति रविवार को लोग शैवी ग्रन्थों का अध्ययन करने के लिये आते थे और शाम को चाय पीकर चले जाते थे। यहाँ कुछ लोग स्वामी जी को कृत्रिम भक्तिभाव या शिष्यत्व दिखाकर उनके कृपा पात्र बनते गये। सुश्री देवी जी को यह कृत्रिम भक्ति भाव और बहिर्मुखता बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थी। वह भिन्न-भिन्न प्रकार की सांसारिक लीलाओं से गुजर कर भी अपनी शैवी साधना, अन्तर्मुखता और गुरु सेवा में तटस्थ रही और अपने मन में कोई मलिनता नहीं आने दी। वास्तव में उनका जीवन ठीक उस कमल-पत्र की भांति था जो सर्वदा पानी में रहते हुए भी अपने ऊपर पानी की एक बूँद भी टिकने नहीं देता। कभी- कभी जब देवी जी का मन कुछ विचलित होता था तो वह कुछ कविता गुनगुनाया करती थी। यह कवितायें भी अभ्यास परक होती थीं, लेकिन मेरी गुरुमाता ताक में रहकर वह कवितायें लिखती जाती थी। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' भी एक छोटी सी कविता में कही है।

उन्हीं के शब्दों में :-

"क्याह कर बर छस गअमच
बर द्रायस न जाँह।
कल नोमरिथ रूज़स दुहय
कल तुलुम न जाँह॥
अछिवटिथ वुछुम सोरूय,
अछि वाहरय्म न जाँह
हिरण संज़ पअठ्य रूज़स वनन।
छाल् मारिय्म न जाँह।
नाफ् ओसुम अन्दरय,
मुश्क आयम नेबरय।

तीर ह्यथ लारयेम पतय,
अथि आयस न जाँह॥"

कभी-कभी मेरी गुरुमाता उनसे पूछती थी कि आपके पास इतना ज्ञान भण्डार है, आप कुछ लिखते क्यों नहीं, इस पर वह उत्तर देती कि लिखने के लिये लिखने वाले रखे हैं। मेरे पास इतना समय कहाँ हैं अर्थात् इतना वह अन्तर्मुख और परभैरव भाव में लीन रहती थीं।

देवी जी कभी घड़ी पर समय देखकर अभ्यास नहीं करती थीं। वह कहते थे कि प्यास लगने के समय हम थोड़े ही घड़ी देखकर पानी पीते हैं। जिसको परमार्थ की प्यास होगी वह घड़ी देखकर नहीं, अपितु अभ्यास की ताक में रहकर पूर्ण होगी।

कभी-कभी देवी जी की अपनी दिनचर्या की बातें भी व्यंग्यपूर्ण और सारगर्भित होती थी, जैसे वह कहती थी कि यह 'जड' वस्तुएँ 'चेतन' से कितनी सेवा कराते हैं तब कहीं उसके काम आते हैं जैसे बर्तन धोते हैं धोने के बाद ही हमारे काम आते हैं। इस तरह पहले सेवा कराते हैं। इसी प्रकार रविवार के दिन जब उनके शिष्य अपनी समस्यायें लेकर उनके कान के समीप कुछ फुसफुसाती थी या कभी उनकी भोजन की थाली में से नैवेद्य मागती थी तो मेरी गुरुमाता उनसे कहती थी कि ये आपको अच्छे से खाना खाने भी नहीं देती हैं, कभी इधर से कभी उधर से अपको तंग करतीं हैं। तो वह झट से कह देतीं थीं कि इसमें क्या आपत्ति है इनको पता है कि कौन सी चिट्ठी कब और किस डाकखाने में डालनी है। ऐसे ही बहुत सारी बातें है जो व्यंग्यपूर्ण होती थीं।

देवी जी की गुरुभक्ति और सद्व्यवहार से अधिक से अधिक लोग उनसे प्रभावित होते गये और कइयों ने उनसे गुरूमंत्र की दीक्षा ली। दीक्षा देने से पूर्व वह श्री श्री सद्गुरू महाराज से आज्ञा ले लेती थी और वह सहर्ष उन्हें अनुमति देते थे।

देवी जी जीवन यात्रा के अन्त तक अक्षुण्ण भाव से गुरुसेवा में

ही लगी रही और अपने तपोबल से सांसारिक मनोवृत्तियों को अपने अन्तस्तल में आने नहीं दिया। गुरूदेव भी उनके प्रति आदर सत्कार और स्नेह की भावना रखते थे, साथ ही गुरुभक्ति, जीवनमुक्त और वैराग्यसम्पन्ना का आशीर्वाद भी देते थे।

सन् १९९० का शीतकाल आया तो सुश्री देवी जी का शरीर ढ़ीला पड़ गया। उनके शरीर में निर्बलता आ गई और जम्मू अपने भाई श्री मोतीलाल जी सोपोरी के साथ भेजा गया अतः फाल्गुण कृष्ण पक्ष की तृतीया १९९१ सन में वह परभैरवधाम को सिधार गई। उस समय स्वामी ईश्वरस्वरूप जी ने उनकी अन्तिम यात्रा का सारा कार्य अपने निरीक्षण में करवाया और उपरोक्त मन्त्रों से उनके जीवन को और भी महान् बना दिया।

"परभैरवलीन्यै पराशक्त्यै
श्री शारिका देव्यै नमो नमः।"

इस प्रकार देवी जी अपना सारा जीवन गुरुचरणों में सौंप कर सदा के लिये अमर हो गई। वास्तव में शिव और पार्वती ही गुरु और शिष्य के रूप में कुछ समय के लिये इस धरती पर अवतरित हुए थे।

दुर्भाग्यवश इस लेखिका ने सुश्री शारिका देवी जी को साक्षात् रूप में नहीं देखा है लेकिन उनका आरभ्भ में लिखित रूप मेरे मानस पटल पर अंकित यदा कदा मेरे स्वप्नों में आकर मेरे माथे पर अपना शीतल हाथ रखते हुए मेरी हृदय गुफा को आह्लादित करके मेरे सारे ताप और सन्ताप मिटा देते हैं। बाकी उनका प्रतिरूप मैं अपनी गुरुमाता सुश्री प्रभादेवी जी में देखती हूँ। ईश्वर करे कि उनकी छत्रछाया हम पर सदैव बनी रहे और उन पर भी अपने श्री श्री गुरु महाराज की अनुकम्पा सदैव बनी रहे।

बाकी सुश्री शारिका देवी जी के बारे में जितना लिखें उतना कम है। मेरी ओर से उन्हें शत् शत् प्रणाम।

दया की मूर्ति–देवी शारिका जी

–चमन लाल कौल

चण्डीगढ़

हमारा सम्पर्क सत्गुरु श्री ईश्वर स्वरूप जी महाराज तथा माता शारिका जी एवं माता प्रभा जी से जनवरी १९७१ से है। मेरे छोटे भाई की नौकरी श्रीनगर कश्मीर मे लग गई तथा कुछ समय पश्चात् उनका सम्पर्क गुरु महाराज जी से हुआ था। एक दिन गुरु महाराज ने उनसे पूछा कि उनके माता-पिता तथा घर के दूसरे सदस्य कहां रहते हैं। उत्तर में उन्हें कहा गया कि वह सब चण्डीगढ़ में रहते हैं। जहाँ मेरे पिता जी तथा भाई कार्यरत हैं। गुरु महाराज ने इच्छा प्रकट की कि वह सर्दियों में उनके घर वालों से मिलेंगे। तत्पश्चात् हमने एक विनम्र तथा सविनय पत्र लिखकर गुरु महाराज को चण्डीगढ़ आने का निमंत्रण दिया। इस बात को बीते काफी समय हो गया। एक दिन अचानक पिता जी को दफ़तर में फोन आया कि गुरु महाराज अगले दिन हमारे यहां चण्डीगढ़ पधार रहे हैं। यह सुनकर हम खुशी के मारे फूले न समाये। अगले दिन गुरु महाराज, माता शारिका जी, माता प्रभा जी तथा अन्य भक्तजन हमारे यहाँ पधारे। पहला मिलन था गुरु जनों का तथा उनके भक्तों का। दो दिन गुरु महाराज हमारे यहाँ रहे। ऐसा लगा कि हम उनको बहुत समय से जानते हैं। दर्शन पाकर मन को बड़ी शांति मिली। गुरु महाराज ने हमें अपने जन्मदिवस पर श्रीनगर आने को कहा।

मैं पहली बार अप्रैल १९७४ में गुरु महाराज के जन्म उत्सव में शामिल हुआ। आश्रम में हमें माता शारिका जी तथा माता प्रभा जी के दर्शन हो जाते थे। जैसे जैसे समय बीतता गया हमारा हर वर्ष आश्रम

में गुरु महाराज के जन्म उत्सव पर श्रीनगर आना हुआ। समय बीतते हमें ऐसा लगा कि माता शारिका जी गुरु महाराज तथा भक्तों के बीच एक पुल का कार्य भार सम्भाल रही थी। एक संसारी मनुष्य के लिए हर बार गुरुवर तक पहुंचना मुश्किल हो जाता था। इस कार्य में माता शारिका जी भक्तों की बहुत सहायता करती थी।

कश्मीर प्रदेश प्राचीन काल से शारदापीठ कहलाता है। इसने कई विद्वानों, ज्ञानियों, संतों तथा महात्माओं को जन्म दिया है। इस प्रदेश को ऋषिआलय भी कहते हैं। आज से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व श्री जिया लाल जी सोपोरी तथा उनकी धर्म परायणा धर्मपत्नी श्रीमती राधिका रानी के घर योगिनी माता शारिका जी ने जन्म लिया। उनके बाल्यकाल के बारे में हमने सुना तथा पढ़ा है। कहते हैं कि उनके जन्म पर सारा परिवार हर्ष विभोर हो उठा । कन्या को देखकर लोगों को ऐसा लगा कि कोई दिव्य आत्मा किसी कारणवश श्री सौपोरी जी के घर आई है। बचपन से ही वह प्रातः तथा सायं आसन पर बैठे प्रभु सिमरन में रम जाती थी। कहते हैं कि कभी अभ्यास में इतनी लीन हो जाती थी कि खाने-पीने की सुध भी नहीं रहती थी।

बाल्यकाल से ही उनका सम्पर्क सत्‌गुरु श्री ईश्वर स्वरूप जी से हुआ। जिन्होंने उन्हें अपना शिष्य बना लिया। यह गुरु शिष्य का संगम इतना गहरा होता गया कि अन्त तक माता शारिका जी ने गुरु चरणों का अनुसरण किया।

माता शारिका जी आजन्म बाल ब्रह्मचारिणी रहीं। उन्होंने वैवाहिक जीवन न अपनाने का मन बना लिया था। भला सोचा जाए आज से इतने वर्ष पूर्व यह विचारधारा कितनी कठिन रही होगी। ऐसा करने पर एक प्रतिष्ठित परिवार में पली बढ़ी कन्या को क्या-क्या सहना पड़ा होगा। परन्तु वह सुदृढ़ थी और साहसी तथा निडर भी।

छोटी आयु से ही देवी जी ने अपने गुरुवर के यहाँ योग साध

ाना की दीक्षा ली तथा शैव सिद्वान्त तथा शैव शास्त्रों का तन्मयता से अध्ययन किया। गुरुदेव के प्रति इतनी भक्ति और श्रद्धा दिन प्रति दिन तीव्रतम होती गई और संतुष्ट होकर गुरुदेव ने भी इनपर अपार अनुग्रह किया। इस परिपूर्ण योगिनी ने २ फरवरी १९९१ को महा समाधि ली। देवी जी के अन्तर्ध्यान होने पर गुरु महाराज ने अजब लीलाऐं कीं। इन लीलाओं से पता चलता है कि देवी जी किस दर्जे की योगिनी थी।

माता शारिका जी, उदारता, संयम, ज्ञान, योग, साहस तथा दया की जीती जागती मिसाल थीं। उनसे केवल दयालुता तथा असीम प्रेम ही देखने को मिलता था। व्यक्तिगत रूप से जब भी मैं अपनी जटिल समस्याओं का सामना नहीं कर सका तो निवेदन करने पर उन्होंने मेरी समस्याएं सुलझा दीं।

उनका व्यक्तित्व शांति, विनम्रता तथा वात्सल्य से भरपूर था। एक बार वह अपनी आँखों के आपरेशन कराने के बाद जब 'चैकआप' के लिए माता प्रभा जी के साथ चण्डीगढ़ आईं तो सीधा हमारे घर पर पधारी । हम तो अति हर्षित हो उठे। अपने भक्तो के प्रति उन्हें अथाह प्रेम था। माता शारिका जी वास्तव मे दयालुता, विनम्रता तथा अनुग्रह की मूर्ति थी।

उनके शुभ-चरण कमलों में हमारे असंख्य प्रणाम।



दूसरा खण्ड

स्मृतियों का गुलदस्ता

चयन कर्त्री

श्रीमती सुधीर कुमार सोपोरी

(वर्तमान उपकुलपति जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली)

An Extract from a letter written by Sri Swami Lakshman Joo

Srinagar,
Janmashtami,
Sunday.
1928

Dear Respected Jawahir Lal Jee Sahib,

Your very kind letter in hand for which my one hundred thanks. What bad thing is done by thy respected self for which I should take the opportunity of pardoning? Sir, if there world be any bad thing also, I would, still, never dream to pardon thy respected self, for, I know I am fit for none here in this world of misery.

One sentence in your kind letter, which I am enclosing herewith, could not be tolerated by me. Thy respected self does not understand the nowaday's situation of blessed Sharika. she should not be advised by thyself in such a way, for her flaming Bhakti towards the Lord of lords has totally defeated the whole Māyāvic Universe. Thy respected self may, I fear, commit sin in advising her in future in such a way. I do not mean to say that you should allow her to come to my cottage;- that you should never do, but what I mean is that nowadays

she is very weak in her physics and by marrying her Heavenly whims, thy respected self may, I fear, prove the end of her precious and devotional life also. Sir, such Devis are rarely found in this world of pains. Her holy existence in your own home will prove the result of thousands of thy good 'Karmās' of the past Janamās if she lives long. Dear Jawahir Lal Jee! Do not go deep in the sayings of others. Do they sincerely say that ? Certainly not. Thy respected self should come to know that the selfish theory is prevailing in each and every part of this mortal world. Every body pretends to be your helper and friend when you do not want any kind of help and when you are actually cought in pains, nobody will come forth to share with thee in thy pains. One of the great sages of the present age has truely said:-

So-called friends bewitching you
For whose sake all things you do
Are but fetters,-know this true;
Mire not thee, O Nectar's Son!

Those for whom thou roll in mire
For whom thou be sinner, liar
Help thee not in sufferings dire
For thy sins, O Nectar's Son!

Though thou suffer for their sake,
They thy sufferings don't partake;
Thy true progress they do check,
Shun them all, O Nectar's Son!

Now let me remain silent in going deep in this subject.

With kind regards I am, Thy own Brother,

जम्मूनगर्याम्
चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां
शुक्रवासरे

शारिकाप्रभे परदेवस्य प्रसादात्सदैव
स्वात्मविमर्शपरायणे भूयास्ताम् ।
अद्य तावदहं सकुशलोऽस्मि किन्तु
सर्वेषामस्माकम् केचित् इलाहाबादे
वर्तन्ते, अपरे धर्मशालनगर्यां संप्र-
वन्ति, इतरे जम्मुप्रदेशे सन्ति एव-
मन्ये श्रीनगरे वर्तन्ते, महती विस्मय-
मयी दशा वर्तते अस्माकमधुना।
अत्र तु दैवमेवापराध्यति नान्यः।
अस्तु। इदानीमस्माकं धैर्येण
वर्तितव्यम् अन्यथा दुःखानुभूति-
रियमस्माकमवश्यं ~~[illegible]~~
व्यथयति। चानहालमार्गस्य

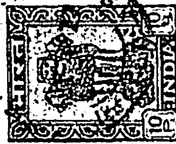
पारिता रोधनात् [illegible] तावदत्रैव
स्थीयते। अस्यां जम्मूनगर्यां
इदानीन्तना राष्ट्रीया स्थिति-
र्भयावहा। अत्रत्याः
सर्वे जना सकुशला सुखेन
वर्तन्ते। पत्रोत्तरं जवाहिर-
लालस्य ~~[illegible]~~ नाम्नि लेखने-
यामिति शान्तिः। सुशीले
मम ~~[illegible]~~ सस्नेहमाशीर्वादं
गृहीत्वा शीघ्रं सौभाग्यं प्राप्नुयात्
युवयोः सदैवार्द्रं लक्ष्मणः।

POST CARD

DHARMSALA
9 30A
49

INDIA POSTAGE

Shri Sharika Devi
c/o
Dr Amar Nath Verma
Veterinary Hospital
Dharmsala



पोस्ट कार्ड
POST CARD
जवाबी
REPLY
केवल पता
ADDRESS ONLY

Shreemati Daya Jee
c/o
Shree B.N. Tankha
A-9, Hastinapur,
District Meerut

ॐ

गुप्तगंगा
26 मार्च

सौभाग्यवती दया जी,

मेरे आशीर्वाद सदैव तुम्हारे पास हैं। आशा है तुम्हारे पतिदेव अब स्वस्थ होंगे। उनको मेरा आशीर्वाद। शारिका जी भी आशीर्वाद कहती हैं।

सदैव तुम्हारा शुभचिन्तक,
लक्ष्मण

ॐ

ईश्वर आश्रम
२९ मार्च ५४

प्रिय प्रभाकर,

मैं यहां सकुशल हूं। यद्यपि मुझे अभी जुकाम ही है तथापि ईश्वर पर्वत का आह्लादकारी दृश्य चारों ओर से सुखप्रद ही प्रतीत होता है। क्या तुम कुशल से हो। शारिका जी के स्वास्थ्य के विषय में मुझे बड़ी चिन्ता रहती है। उस के स्वास्थ्य के विषय में मुझे विस्तारपूर्वक सूचित करना यदि तुम दोनों गोपीनाथ के संग ही चली आती तो बहुत ही अच्छा था। आज अब सोमवार है। मैं गरम पानी से नहा कर बुखारी के कमरे में बैठा हुआ हूं। मेरे सामने पृथ्वीनाथ काजी बैठा हुआ है। वापस जाने की तय्यारी करता है। सैगर में निरा काम कर रहा है और चनवती और चुन्नी सोनकटनी की सब्ज़ी काट रही हैं। प्रभाकर तुम यह सुन कर बहुत ही प्रसन्न होजाओगी कि आज कल लालिता यहां नहीं है। कारण यह कि उस की छोटी लड़की को बुखार है। अब यहां तुम्हारे आने की बहुत ही आवश्यकता है क्योंकि पाब्लिक के हाथों में मुझे छोड़ना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है, बल्कि तुम्हारा परम-कर्तव्य यह है कि मेरी पारमार्थिक तथा शारीरिक स्थिति कायम रखने के लिये प्रयत्न-तत्पर बनना। आगे तुम दोनों की मरज़ी। वस्तुतः तुम्हें चाहिये कि गोपीनाथ के साथ ही मेरा सारा सामान लेकर आजाओ और अपने जन्म को सफल करो। कन्या शील। तुम्हारे पास ही है। उस को मेरी ओर से आशीर्वाद पूर्वक ज़ोर से आलिंगन करना। जानकी जानजी तथा बाई जानजी कैसे हैं उनका सारा हाल लिखदेना। मोती लाल जी कब आये होंगे। क्या उन्हों ने मेरे लिये

एक छाता लाया है यदि नहीं तो तुम
जम्मू में ही एक छाता ५-या ६ रूपये
का बच्चियों के लिये खरीदना।
मैं यहाँ आकर पैसे देदूँगा। नील-
कण्ठ के लिये भी एक ऊनी
टोपी खरीदना ३-४ रूपये की।
शेष सबों को आशीर्वाद।

तुम्हारा लक्ष्मण

सद्गुणशोभिनी ब्रह्मवादिनी
शारदा भगवती मम सस्नेहमाशीर्वादं
स्वीकुरोतु। तस्याः हितैषी
लक्ष्मणः

अन्तर्देशीय पत्र





Shreemati Prabha Devi
E.P. 486
Talab Khatika
Jammu Tawi

Lakshman...
P.O. ...
Kash...

ॐ

प्रयागराज

सद्भक्ता, जीवन्मुक्ता, शिवानुसन्धान-
परायणा श्री प्रिय शारिका जी,

बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हारा
कोई भी पत्र न मिला। धन्यवाद।
पत्र न लिखने के लिये पुनः
धन्यवाद।

मेरी ओर से टाठ्य साहिब
तथा टाठी जी को आशीर्वाद।

प्रभु करे कि तुम —
गुरुभक्ता बनो, वैराग्य संपन्ना,
योगपरायण तथा स्वात्मशिवानुसंधान
में निमग्न होकर संपूर्णतया
जीवन्मुक्ता बनो।

तुम्हारा लक्ष्मण

अन्तर्देशीय पत्र
INLAND LETTER



Shree Prabha Devi Mattoo,
C/o
Shree M. L. Sopory,
23 Wazir Bagh,
Srinagar, Kashmir

भेजने वाले का नाम और पता :- Sender's name and address

NO ENCLOSURES ALLOWED

me on that day.

Sharika jee & Prabha are here and send you their love & ashirvads. Kindly convey my ashirvads to dear Kapil jee & others.

The weather of Kashmir is very fine now. It must be very hot there.

Wazir Bagh people are all well.

with blessings

yours as ever,
Lakshman joo

Sri Guptaganga
13th May

Dear Sudhir,

Thank you for your Telegramme. My Birthday was celebrated nicely. Hope you also remembered

पोस्ट कार्ड
POST CARD

केवल पता
ADDRESS ONLY



Sudhir Sopory,
80 Gwayer Hall,
University of Delhi,
Research Scholar,
Botany Department

ओं

सौंथ मोती बाग
नई दिल्ली
१३ मारच ६६

प्रिय प्रभकाक जी,

मैं हारिद्वार से सकुशल पहुंचा, अब ईश्वरेच्छया मैं कल शाम की गाड़ी में पठानकोट जाऊंगा। वहां एक दिन ठहर कर चार दिन के लिये पालंपुर जाऊंगा फिर वहां से आकर एक रात फिर पठानकोट में रहकर जम्मू जाऊंगा। मुझे शायद जम्मू में चार पांच दिन रहना पड़ेगा। इत्यतः नवरात्रियों में मैं तुम्हारे पास पहुंचूंगा। क्या शारिका जी ने जलाने की लकड़ी खरीदी है। यदि हो सके तो वह लकड़ी सुखा के रखना। क्या तुम दोनों का स्वास्थ्य ठीक है। पं० सतराम जी को सस्नेह आशीर्वाद। गोपे को आशीर्वाद। नन्दलाल को आशीर्वाद।

रविवार की मण्डली को आशीर्वाद। प्रिय मोहनलाल जी को सस्नेह आशीर्वाद। शेष कुशल

तुम्हारा शुभचिन्तक
लक्ष्मण

अभ्यासतत्परतयैव सर्वदा भाव्यम्, मायात्मको हि लोकः सर्वतो दृश्यते — इत्यतस्तान्निवृत्त्यर्थमेकतत्त्वाभ्यास एव श्रेयस्करो भवतीति मन्ये।

त्वत्कुशलोपलम्भेन स्वात्मकुशलं मन्यमानो लक्ष्मणः



Shreemati Prabha Devi c/o
Shree Lakshman joo Mahatma
Ishibhar Ashram,
P.O. Brein, Srinagar
Kashmir

ओं

सौथ मोती बाग
[redacted] नई दिल्ली
१२ - ३ - ६६

प्रिय प्रभा जी,

शिवानन्दाश्रम में मैं ने जो भाषण दिया उस का दिग्दर्शन मैं इस पत्र में लिख देता हूं —

'आज [redacted] पु[redacted]सद्गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी के पुण्य-आश्रम में [redacted] आप सज्जनों के सामने मुझे शिव-शास्त्रों के विषय में कुछ प्रकाश डालने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

शिवशास्त्रों की उत्पत्ति भगवान् शंकर के पांच मुखों से हुई है। वह पांच मुख क्रमशः ईशान-वक्त्र, तत्पुरुष-वक्त्र, सद्योजात-वक्त्र, वामदेव-वक्त्र और अघोर-वक्त्र कहे हुए हैं। यह पांच मुख कोई स्थूल-मुख नहीं है, बल्कि शिव की चिच्छक्ति, आनन्द-शक्ति, इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति के सूचक हैं। यह शैव-शास्त्र चार प्रणालियों में विभक्त हुआ है। स्पन्द-विज्ञान, प्रत्यभिज्ञा-विज्ञान, क्रम-विज्ञान और त्रिक-विज्ञान। स्पन्द-विज्ञान की प्रणाली में समस्त विश्व का आधार

ही स्पन्द-तत्त्व ही माना गया है और साधक को इस प्रणाली में स्पन्द-तत्त्व की गवेषणा करनी कही गई है जो किसी भेद-संमिश्रित स्पन्द से परे है और वास्तव में केवल स्वरूप-स्पन्द ही कहलाता है। प्रत्यभिज्ञा-विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं जहां साधक शिव-साक्षात्कार किसी नये सिरे से नहीं करता अपितु उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि स्वरूप वास्तव में कभी भी अप्रकाशित नहीं हुआ है अपितु सदोदित ही है और वह पुरातन ही है।

'प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञाने प्रत्यभिज्ञानम्'

क्रमविज्ञान का वास्तविक मर्म यही है कि वास्तव में जो हम इस जगत में देश और काल देखते हैं वे दोनों आभास ही हैं और वह कुछ भी नहीं है। क्योंकि मूर्तियों की एकानेकता ही देश है और क्रियाओं की बहुलता ही काल है। त्रिक-प्रणाली में यह वर्णन किया है कि नर-शक्ति और शिव वास्तव में एक स्वरूप जगदात्मा शिव का है और अवरोह-क्रम से

वह प्रभु शिवरूपता से प्रसारित होकर शक्ति-रूपता के द्वारा नर-रूपता में प्रविकासित होता है और आरोह क्रम में वही नरात्मक-स्वरूप शक्तिरूपता के द्वारा शिव-रूपता का आश्रय लेता है।

अब शिव-शास्त्रों के उपाय-क्रम की ओर तनिक ध्यान दीजिये——

प्रमातृरूपता में ठहर कर जिस उपाय का आश्रय लिया जाता है वह शाम्भवोपाय कहलाता है, प्रमाणरूपता में आश्रय लेना शाक्तोपाय कहलाता है और प्रमेय रूपता का आश्रय लेकर उपायों को आणवोपाय कहते हैं।

शाम्भवोपाय में साधक इस समस्त हानादानादि व्यवहार को संवित्प्रतिबिम्बित ही देखता है और अन्त में पूर्णाहन्ता-विमर्श में सदा के लिए ठहरता है।

शाक्तोपाय में किन्हीं दो विकल्पों के बीच

में अपनी संवित्ति को ठहरा कर वह मध्य-संवित्ति के अनुसंधान करने का प्रयास करता है और स्वरूप-साक्षात्कार से संपन्न बन जाता है।

आणवोपाय में साधक को जप, मन्त्र, ध्यान, यज्ञ, पूजा, प्राणायाम का आश्रय लेना पड़ता है तभी तो वह स्वरूप-साक्षात्कार से संपन्न बन जाता है।

इस के अतिरिक्त मैं ने शिव-शक्तिपात के विषय में कुछ प्रकाश डाला और अन्त में इस की महानता वर्णन करके मैं ने उन्हें यह बताया कि शिव-शास्त्र अधिकारी-भेद की सीमा से बाहर है। मेरे इस भाषण से वहां के लोग बहुत प्रभावित हुए। अब मैं श्रीनगर पहुँच कर ही सारा बताऊँगा। पत्रोत्तर अब जम्मू के पते पर लिखना और वहां का सारा हाल लिख देना।

तुम्हारा शुभचिन्तक,
लक्ष्मण

ओं

गांधीनगर
२० फरवरी

अत्यन्त प्रिय शारिका जी,

कल शाम को टेलीफोन पर तुम्हारे साथ मुलाकात हुई, मानों तुम्हारे दर्शन ही साक्षात् किये। आज प्राणनाथ रैना ने टेलीफोन किया था वह भी सकुशल है। खैर मैं अब मार्च के प्रथम सप्ताह तक के दिन गिन रहा हूं, यदि प्रभु की कृपा और इच्छा हुई तो मैं अब शीघ्र ही श्रीनगर आ जाऊंगा। अपने स्वास्थ्य का काफी ख्याल रखना। दूध दही का सेवन पर्याप्त मात्रा में कर लेना और प्रभा को भी अच्छी तरह खिलाना पिलाना। देहली से सावित्रप्रकाश जी तथा कमला से बहुत पत्र आये। लिखते हैं कि दो चार दिन के लिये आना चाहिये। मैं ने अब यही निश्चय किया है कि नैन्सी का विवाह होने के पश्चात् ही मैं श्रीनगर की ओर प्रस्थानित हो जाऊंगा। बलजिनाथ पण्डित भी आज या कल श्रीनगर चला जायेगा।

अस्तु मनुष्य वास्तव में इधर उधर के बातों में जीवन नष्ट कर देता है, वह यह नहीं समझता है कि आयु का एक क्षण भी अमूल्य-रत्नों के तुल्य है और उस में भी यदि

प्रभु ने हमें नीरोग बनाया है और हमारे सामने अभ्यास करने के अनुकूल वातावरण दे रखा है और हमें जो चाहिये वह भी सामने रखा है, तब भी यदि हम अपनी आत्मा को पार करने में असफल बनेंगे तो फिर इस के अतिरिक्त और क्या खेद हो सकता है। इत्यतः इस बात पर ज़रा हमें विचार करना चाहिये कि हमें क्या करना था और हम क्या कर रहे हैं। कहा भी है

'पुमान् भवाब्धिं न तरेत्सं आत्महा'

अर्थात् उसी व्यक्ति ने अपनी आत्मा की हत्या की है। अस्तु मेरी ओर से तुम्हें तथा प्रभा को हार्दिक आशीर्वाद है। तुम दोनों का जीवन सफल हो! मेरी ओर से सतराम जी को आशीर्वाद। गोपे को आशीर्वाद। नन्दलाल को आशीर्वाद। और सबों को यथायोग्य। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में सदैव तुम्हारा शुभचिन्तक लक्ष्मण।

मानसरोवर
जम्मू, 12-2-83.

सद्भक्ता प्रभा जी,

मैं यहां सकुशल हूं। वास्तव में गांधीनगर का टेलिफोन ठीक नहीं है, इसलिए तुम्हारे साथ बात करने में प्रायः विघ्न ही आता रहा। अस्तु भगवान् की कृपा से मैं ने अपने त्रिकशास्त्ररहस्यप्रक्रिया का काम भी कुछ कुछ कर लिया। श्रीनगर में मैं ने उस पुस्तक के ३९ पृष्ठ लिखे थे। यहां आकर मैं एकसौ चार पृष्ठों तक पहुंचा। मुझे आशा है कि और कुछ पृष्ठ लिखे जायेंगे।

आज हम जम्मू की मण्डली के साथ यहां सैर करने के लिए आये हैं। आशा भी हमारे साथ आई है। इस बार मैंने जम्मू से पत्रव्यवहार करना एकदम बन्द किया है, तभी तो कुछ कुछ लिखा गया है त्रिकशास्त्रप्रक्रिया का।

अब मैं जम्मू से श्रीनगर शीघ्र ही प्रस्थानित हो जाऊंगा। मैं ने पच्चीस फरवरी के प्रातः By road जाने का विचारा है। आगे प्रभु की इच्छा। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि जरसी गायशी कवर होगई। अब हिनीस भी उसी दिन श्रीनगर की ओर प्रस्थान करेगी। मुझे आशा है कि शारिका जी भी सकुशल होंगी। रामस्वरूप जी ने भी आप लोगों की खबर पहुंचा दी। सबों की ओर से नमस्कार। बड़े स्वामी जी के जन्म-उत्सव पर हम ने गुरु-स्तुति इत्यादि का पाठ करा दिया। शाम को नैवेद्य भी बांटा गया। मेरी ओर से सबों को आशीर्वाद। मुझे आशा है कि भगवद्गीता का संशोधन समाप्त हुआ होगा।

आप दोनों का शुभाकांक्षी
लक्ष्मण



गुरु सेवा पर किया समर्पण
तनमन धन और उन्मत यौवन
प्रभा बनी अपने सद्गुरु की
देवीप्रभा कर स्वात्म समर्पण।।

१५-१०-७८

सोमवार का दिन था। ईश्वरस्वरूप जी गॉड्स हाउस मौन व्रत के लिए गए। वहाँ प्रभा से निचले मकान की ताली रह गई। जब वहाँ से लौटे तो यहाँ ताली याद आई। अब क्या करते, तय यह हुआ कि सारी रात बरामदे में बैठेंगे। इतनी देर में कमला जी अपनी सभी कुंजियाँ ले आईं। देवी जी तथा कमला जी ने अति प्रयत्न किया कि ताला किसी कुंजी से खुले, किन्तु सब कार्य बेकार रहा। फिर प्रभा ने एक ताली उठाई और "जय गुरूदेव" कहकर लगाई। ताला एकदम खुल गया। इस पर दूसरे दिन देवी जी ने महाराज जी से कहा, "जब ताले भी किसी अन्य तालिका से खुलना नहीं मानते हैं, फिर आजकल की युवतियाँ कैसे पर-पुरुषों का सहवास स्वीकार करती हैं?" इस पर महाराज जी ने कहा, "मास्टर की सभी तालों में लगती है तभी तो ताला 'जय गुरुदेव' कहने से एकदम खुल गया।"

३-१-७९

सतराम जी व ईश्वरस्वरूप जी परस्पर वार्तालाप कर रहे थे कि आखिर यह मन की उछल-कूद व्यक्ति मात्र की पूर्णरूप में कब निःस्पन्द होकर शान्त की जाएगी। इस पर देवी जी कह बैठीं, "महाराज ये वासनाएँ रूपी लताएँ कैसे शमित होंगी, जबकि प्रत्येक व्यक्ति इनको सुखाने के उलट इनका सिंचन ही करता रहता है। किसी अंश में भी इन्हें सूखने नहीं देता है। फल यह होता है कि जन्म जन्मान्तरों में यह बेल हरी-भरी रहती है। करना तो था कि इस वासना रूपी बेल को उगने ही न देते। सींचने से तो यह बढ़ती ही जाएगी।" इस उत्तर को सुनकर ईश्वरस्वरूप जी तथा सतराम जी एकदम मौन हो गए। वे कहने लगे, "यह बात तो यथातथ्य है।"

५-१-७९

ईश्वरस्वरूप जी ने अपने कमरे के पर्दे धुलवाये थे। उनमें से दो तीन पर्दे बिल्कुल फट रहे थे। ईश्वरस्वरूप जी ने देवी जी से कहा, "इन पर्दों में प्रेस धीरे धीरे करना कहीं अधिक फट न जाएँ।" देवी जी ने बड़े गम्भीर होकर कहा, "ये पर्दे स्वयं अपना पर्दा नहीं रख पाते हैं, भला ये दूसरों को क्या पर्दा रखेंगी। ऐसे पर्दे तथा मनुष्यों से डरना चाहिए जो न तो अपना परदा रखें न दूसरे का परदा रखें।"

७-१-७९

रात्रि के आठ बजे थे। सारे दिन में लोगों के यातायात से देवी जी मन ही मन खीझ रही थीं। सभी भक्तों के जाने के उपरान्त ईश्वरस्वरूप जी ने देवी जी से कहा, "अब सभी किवाड़ों में ताले लगा दो और मौन रूप से अपना भजन करो।" उत्तर में देवी जी ने बड़े धीमे शब्दों में कहा, "व्यक्ति अपनी वस्तु को सुरक्षित रखने के लिए ताले लगाता है। लोग आए भी, गए भी, अपने संस्कार हमारे मस्तिष्क के चित्र-पट पर डाल भी गए। अब ताले देने बेकार हैं। रात्रि को चोर वस्तुएँ ही ले जाएगा। ये व्यक्ति तो अपनी भावनाओं की गट्ठी हमारे पास रख कर चले गए हैं। अब ताले लगाने तो बेकार हैं।" इस पर ईश्वरस्वरूप जी ने कहा, "जैसी तुम्हारी इच्छा हो वही करो।"

१३-१-७९

हम इलाहाबाद जा रहे थे। रेल के डिब्बे में हम सब रात भर बड़े आनन्द में लेटे। प्रातः काल होते ही हम सभी नित नियम कर चुके। तदनन्तर देवी जी ने अपने शरीर को सँवारना प्रारम्भ किया, कभी बाल सँवारे, कभी मुँह पर हाथ फेरा । हमारे करीब बैठी एक स्त्री उनकी इस क्रिया को देख रही थी। देवी जी ने बड़े गम्भीर होकर उस से कहा, "क्या देख रही हो? इस समय प्रातः काल का समय है।

सभी पुजारी अपने मन्दिरों को साफ करने में लगे हैं। अतः हम भी इस शरीर के पुजारी हैं। इसीलिए हम भी इसको (शरीररूपी मन्दिर) प्रातःकाल होते ही साफ रखने का प्रयत्न करते हैं। यह शरीर ही तो देवालय है। इसमें भगवान् का निवास है अतः इस को साफ रखना पुजारी का परम कर्त्तव्य है।"

१०-२-७९

प्रातः सात बजे का समय था। ईश्वर स्वरूप जी सोमवार के मौन व्रत से निवृत्त होकर मंगल की प्रातः चाय पीने के लिए बरामदे में बैठे। मैंने देवी जी से कहा, "मुझे आज रात को दही खाने से इतनी नींद आई कि मैं प्रातः अपने समय पर जग न पाई। अतः मन बड़ा विक्षिप्त हो गया।" ईश्वरस्वरूप जी चुप होकर सुन रहे थे। देवी जी एकदम कह बैठी, "मुझे तो उस जागृति से गहरी नींद ही प्यारी है, जिस जागृति से सभी कार्यकलाप करते हुए अनुसंधान न रहे, वह जागृत अवस्था न होकर नींद ही है, अतः तुम्हें दुःख क्यों हो रहा है। अब तो तुम जगी हो, यदि सोने तक अनुसंधान रहेगा, तो प्रातः काल देर से उठना क्या माने रखेगा। अभी से जगो, अनुसंधान की ओर ध्यान रखो तथा सजग रहो। यही वास्तव में प्रभु से मिलने का उपाय है। कई जप करने वाले दस मालाएँ जपते रहते हैं मानो रहट चला रहे हों, किन्तु मन भागता रहता है ऐसे जप का क्या तात्पर्य है।"

११-३-७९

मैं बरामदे में बैठ कर अभिनव गुप्त की गीता का अनुवाद हिन्दी में कर रही थी। मैंने 'भ्रम' शब्द कोष में देखा। देवी जी निकट बैठी थीं। अति सरल शब्दों में मुझसे पूछा कि 'ब्रह्म' शब्द तो छोटे 'ब' से लिखा जाता है जो सभों का जीवन है और 'भ्रम' जो माया है यह बड़े 'भ' से लिखा जाता है। वास्तव में महान व्यक्ति अपनी आकृति को छिपा

कर चलते हैं और ओछा व्यक्ति अपने को महान् बताने के प्रयास में लगा होता है तभी तो जगत का पिता ब्रह्म छोटे 'ब' से लिखा जाता है और जगत को उलझाने वाली माया का द्वितीय नाम 'भ्रम' बड़े 'भ' से लिखा जाता है। यह भाव सुनकर सभी चौकन्ने हो गए।

१४-३-७९

प्रातःकाल नौ बजे का समय था। दो-तीन देवियाँ पढ़ने के हितार्थ आई थीं। उनसे देवी जी ने बड़े सरल शब्दों में पूछा, "तुम कितना समय प्रभु भजन में लगाती हो?" वो कहने लगीं, "माता क्या कहें, ये घर के धन्धे एक के बाद एक पीछा ही नहीं छोड़ते, जब तक रात आ जाती है।" इस पर देवी जी ने समझाते हुए कहा, सांसारिक कार्य मरण-पर्यन्त नही छूटेंगे। अब यही सुझाव है कि समय मिलते ही तुम ही कार्य को छोड़ दो। अपने विमर्श में लगे रहने से यदि फिर कार्य करोगी भी वह विक्षिप्त नहीं करेंगे। अतः सभी कार्य करो पर फंस कर न करो, तभी मन निर्मल रह सकेगा।"

१६-३-७९

दर्शनार्थी देवियों के साथ प्रसंग चला कि गृहस्थियों को परस्पर कैसा व्यवहार करना चाहिए। सभी ने अपने उद्गार प्रकट किए। किसी ने कहा "हम क्या कर सकते हैं जबकि हमारे आगे-पीछे रहने वाले संबंधी हमसे उल्टा व्यवहार करने लगते हैं, तब तो हमें भी वैसा ही करना पड़ता है।" देवी जी सरल शब्दों में बोलीं, "तुम सदा अपना रास्ता साफ रखा करो। तुम अपना कर्त्तव्य किया करो, उससे तुम्हारे हृदय में कूडा कर्कट जमा नहीं होगा। सद्व्यवहार रूपी झाड़ू लगाते रहो, ताकि कूड़ा जमा न होने पाए, तभी मन निर्मल बनेगा। विरोधी जनों पर तुम्हारे निर्मल हृदय का प्रभाव अवश्य पड़ेगा और वे स्वतः तुमसे प्रेम करने लगेंगे।"

२०-३-७९

शाम का समय था। बिजली चली गई थी, अतः ईश्वरस्वरूप जी प्रकाश देने वाली गैस जलाने लगे। जलाते समय मेन्टल पूरा जल न पाया। देवी जी उसको देखते ही धीमे शब्दों में कह बैठीं, "देखो जब तक तपस्या की भट्टी में पूर्णरूप से कोई न जले, तब तक प्रकाश रूपी चमक की प्राप्ति नहीं होती। जलने के बाद ही प्रकाश की प्राप्ति होती है। जब तक मेन्टल पूर्णरूप से जलेगा नही, तब तक प्रकाश का होना असम्भव है। अतः जहाँ तक हो सके हमें त्याग तथा तपस्या करते रहना चाहिये। तब उज्जवल बनेंगे।" उनकी बात का अनुमोदन करते हुए गुरुदेव ने मुझे कहा, "स्मरण रखो कितना सारगर्भित उपदेश दिया है। बिना तपस्या के जीवन कान्तिमय नहीं होता।"

२२-३-७९

हमारे आश्रम में कई स्त्रियाँ पूर्णरूप से बहिर्मुख वाली आ धँसी। उनको देखकर देवी जी अति अशान्त सी हो जाती थीं। ईश्वर स्वरूप जी उनका पक्ष लेते हुए देवी जी पर ही बरसा करते थे। एक दिन ईश्वरस्वरूप जी अंगनाई में बैठे हुए थे कि उनके सामने मैनाएँ इधर-उधर चलने लगी। ईश्वर स्वरूप जी कह बैठे, "जाने मुझे मैनाएँ क्यों बुरी लगती हैं?" देवी जी ने मौका देखकर धीमे स्वर में कहा, इनका चलना फिरना बेढ़ंगा ही है। ये विष्ठा तक खाती हैं, पर अभिमान से गर्दन ऊँची रखती हैं, इसलिए आपको बुरी लगती हैं। इसी भाँति जो व्यक्ति अपने अवगुणों पर दृष्टिपात न करके गुणवान बन कर सम्मुख आता है, उसका उठना बैठना हमें भी बुरा लगता है।" यह सुनकर ईश्वर स्वरूप जी हँस पड़े।

२५-३-७९

देवी जी बरामदे में बैठी थीं। मैंने उनकी धोती में दो-तीन छिद्र

देखकर कहा, "आपने आज यह छिद्रों वाली धोती पहनी है।" वे तनिक मेरे मुख की ओर देख कर कहने लगीं, "तुम्हें धोती के छिद्र तो दिख गए। शरीर तो छिद्रों से भरा है, क्या उनकी ओर कभी ध्यान न गया। इन बातों की ओर ध्यान ही नहीं जाना चाहिए। सदा अन्तर्मुख रहने का प्रयास करना चाहिए। धोती में छिद्र हैं तो क्या हुआ।" यह सुनकर मैं चुप हो गई।

२७-३-७९

गोपीनाथ सेवक कहीं छिपकर सिगरेट पी रहा था। उसे जब बुलाने के लिए आवाज़ दी गई तो वह तुरन्त आ गया। उसके नथनों से धुआँ निकल रहा था। देवी जी ने गंभीर होकर कहा, "तूने चूल्हे में आग किस समय जलाई है? चूल्हे के छिद्रों में से धुआँ निकल रहा है।" वह शर्मिन्दा होकर वहाँ से हँसता मुस्कुराता हुआ चला गया।

२२-४-७९

ईश्वरस्वरूप जी का जन्मदिवस २३ अप्रैल को आ रहा था। हम सभी शिष्यवर्ग बरामदे में महाराज जी के सम्मुख बैठे थे।

रात्रि का समय था। चींटियों के पर आने के कारण वे बिजली के लेम्प के चारों ओर नाच रहीं थी। किसी भक्त ने कहा, "ये तितलियाँ आजकल कहाँ से आ गईं?" देवी जी ने कहा, "शायद ये रेशम के कीड़ों के पर आ गए है।" इस पर दूसरे भक्त ने कहा, "यह रेशम के कीड़ों का समय नहीं है। वह तो जून जुलाई में उत्पन्न होते हैं।" देवी जी ने तनिक विचार कर कहा, "हाँ ठीक है। हम यहाँ आश्रम-रूपी नौका में बैठकर नहीं जान पा रहे हैं कि हम विश्व के डल के किस समय रूपी प्रवाह में अपनी नौका को ले जा रहे हैं। यहाँ तो हमें महीनों का भी ध्यान नहीं है कि कौन सा महीना चल रहा है। हम तो अपने कार्यों में लगे हुए हैं। यदि यही दशा रही तो हमें अपनी मृत्यु का भी

ध्यान नहीं रहेगा। हम आनन्द में उसका भी स्वागत करेंगे और संसार से सदा के लिए कूच कर जायेंगे।''

२६-४-७९

रात्रि के समय महाराज जी बरामदे में बैठे थे। कुछ शिष्य भी सम्मुख बैठे थे। ईश्वर स्वरूप जी ने कहा, ''मैं 'वीणा' नामक सेन्ट छः रूपए की लाता हूँ। इंटिमेट सेन्ट बहुत महंगी होती है और उसमें उत्कट सुगंधि नहीं होती।'' इस पर देवी जी ने धीमे शब्दों में कहा, ''यह तो स्वाभाविक बात है जो अपने में ही सुगंधि को स्थान देगा, वह अवश्य बहुमूल्य होगा। बाहरी आडंबरों में आकर जो अपनी सुगंधि का बाह्य असर करेगा, उसकी कीमत घट जाएगी। अतः 'वीणा' नामक सेन्ट की एक तो कम कीमत है और दूसरे उत्कट सुगंधिमय है। इसलिए इंटिमेट कम सुगंधि को तो देने वाला है पर है बहुमूल्य।''

१५-५-७९

देवी जी का शरीर शिथिल होने के कारण रोगी हो गया। कुछ समय पश्चात् भक्तों ने आकर कुशल-क्षेम पूछी। देवी जी ने मधुर शब्दों में कहा, ''मुझे तो तत्व दृष्टि से कुछ भी नहीं हुआ है। शरीर का रोग मेरे मानस-पटल को तो रोगी नहीं बना सकता। मैं तो मन से प्रसन्न हूँ अतः रोग भी काफूर-वत् नष्ट हो जायेगा।

२०-५-७९

देवी जी से उनकी शिष्या ने सरल शब्दों में पूछा, ''भगवत् आराधना किस प्रकार करनी चाहिए?'' देवी जी ने उत्तर दिया, ''जिस भाँति मार्ग में चलती हुई गाय हरी-हरी घास खाने के लिए लालायित होने के फलस्वरूप उसे ज्यों ही खाने का प्रयास करे साथ वाला ग्वाला उसकी रस्सी को खींच कर उसे आगे बढ़ने के लिए खींचता रहे, उसी भाँति इस जीव को शक्तिपात रूपी रस्सी विषयों की ओर जाने से

पूर्व ही पुनः अपने अनुसंधान की ओर आकर्षित करते रहे, वही तथ्य शक्तिपात कहलाता है। गाय के गले से रस्सी बाँधने के समान अमृत रस का अनुसंधान सदा इसको अपने लक्ष्य की ओर ले जाता रहता है, इसे प्रभु कृपा कहते हैं।''

२०-६-७९

देवी जी, मैं तथा अन्यान्य भक्त जब सोमवार के दिन बरामदे में सत्संग कर रहे थे। अभ्यास करने पर बात चली। मन के उछल-कूद के विषय में सभी बातें कर रहे थे। देवी जी ने अति सरल शब्दों में कहा, ''इस मन को तुम अभ्यास के समय एक घड़ी की भाँति समझो। प्राण तथा अपान को इस घड़ी की दो सुइयाँ समझो। एकाग्रता तुम्हें तब होगी जब इन दो सुइयों को बराबर की सीध में रखोगे। एक सुई बारह के स्थान पर और दूसरी छः पर रखनी चाहिए, तब मन किसी ठिकाने पर रह कर अभ्यास करेगा और तुम्हें एकाग्रता होगी।''

२७-६-७९

मैं, ईश्वरस्वरूप जी तथा देवी जी बरामदे में बैठे थे। मैंने ईश्वरस्वरूप जी से कहा, ''आप हम दोनों की अवहेलना करते रहते हैं, अन्य शिष्य अपनी मस्ती में झूमते रहते हैं, उन्हें तो आप कुछ नहीं कहते।'' देवी जी ने बात को काटते हुए कहा, ''तुम्हें इनकी अवहेलना से क्या मतलब? अपनी नौका ऐसी होनी चाहिए, जिसमें किसी प्रकार का छिद्र न हो। वह नौका बिना किसी की सहायता के न तो कभी डूबेगी और स्वयं पार किनारे लगेगी। नौका वैसी नहीं होनी चाहिए, जिसकी मरम्मत आए दिन करनी पड़े। अपनी नौका ठीक होगी तो अनुसंधान रूपी मल्लाह उसे स्वयं पार लगा देगा।'' यह सुनकर ईश्वर स्वरूप जी हँस पड़े और कहने लगे कि, ''पते की बात कही। गाँठ बाँध लो।''

३०-६-७९

सायंकाल का समय था। हम सतराम जी के साथ बरामदे में बैठे थे। सभी ने अपने शरीर की निर्बलता के विषय में अनुभव कहे। देवी जी ने बड़े मधुर तथा गम्भीर शब्दों में कहा, "यह जीव पचास वर्ष के पश्चात् इस विश्व में बेकार जीता है। जन्म के समय सभी हर्षित होते हैं किन्तु जब वृद्धावस्था की ओर मुख करता है तो धीरे-धीरे थका सा दिखाई देता है। यह तो ठीक वही रूप दिखाई देता है जैसे यात्री यात्रा के समय थक कर कांत तथा शान्त दिखाई देता है उसी भाँति यह जीव जन्म जन्मान्तर की यात्रा से थक कर चाहता तो है कि अपने लक्ष्य-स्थल पर पहुँच कर विश्राम करे किन्तु वह लक्ष्य स्थल इसके हाथ कभी आता ही नहीं है। अतः चल-चल कर बेहाल हो जाता है।" यह सुनकर सभी गम्भीर हो गए।

५-७-७९

ईश्वर स्वरूप जी के साथ हम सभी बरामदे में बैठे थे। एक नवीन विवाहिता दम्पति महाराज जी के सम्मुख उपस्थित हुआ। ईश्वरस्वरूप जी ने मुझसे पूछा, "ये कौन हैं?" मैंने लड़की की आकृति देखकर कहा, "महाराज आपकी बहिन के लड़के की कन्या है।" लड़का केरल प्रान्त का कृष्ण वर्ण का था, लड़की श्वेत वर्ण की थी। दोनों को देखकर देवी जी बाद में कहने लगीं, "मैंने आज तक एक ही समय में रात और दिन को नहीं देखा था। आज एक ही समय व स्थान पर दोनों के दर्शन किए।" महाराज जी ने कहा, "पूर्णिमा और अमावस्या दोनों मिलकर मेरे सम्मुख आए थे।"

१०-७-७९

मैं, देवी जी तथा दीनानाथ जी गंजू बरामदे में बैठे थे। मुकदमे पर बात चली। दीनानाथ जी ने कहा, "यदि मकान मालिक किरायेदार

को निकालता है तो किरायेदार मुकदमा करता है कि मकान खाली नहीं करेंगे। "मैंने कहा," विश्व में ऐसा क्यों होता है। स्वार्थ परायण ाता के कारण ही ऐसा होता है। आखिर मकान तो मकान मालिक का ही है, फिर मुकदमे क्यों किए जाते हैं?" देवी जी हम दोनों की बात सुनकर कह उठीं, "क्या हम सभी इस शरीररूपी मकान में किरायेदार नहीं है? मकान मालिक अर्थात प्रभु हमें बुढ़ापे की वारंट देता है। दांत निकलने की वारंट भेजता है। हम निकलने का भय न समझ डॉक्टर रूपी वकील के पास जाते हैं। जो दवा दारू करके कुछ समय के लिए ठीक कर देते हैं। किन्तु समय के आने पर मुकद्दमा स्वयं खारिज होता है और महाकाल हमें इस मकान में से निकाल देता है। इस मकान में किरायेदार नहीं है। क्या हम इस शरीर रूपी मकान पर कब्जा करके बैठे हैं और इस मकान को ही अपना स्वरूप समझते हैं।"

१३-७-७९

मैं, ईश्वरस्वरूप जी तथा देवी जी बरामदे में एकान्त में बैठे थे। बात चली कि अब बहुत अंग्रेज़ यहाँ आने लगे हैं।" महाराज जी ने कहा, "यदि हम चाहें तो इससे भी अधिक आएंगे।" देवी जी ने सरल शब्दों में कहा, "महाराज इस संसार में मैने अनुभव किया कि छत रहित छोटी सी, नौका रूप धारण करना चाहिए। सबों से ऊपरी सम्बन्ध रखना चाहिए। भीतर से प्रभु के अतिरिक्त कोई अपना नहीं दिखना चाहिए। तभी नौका सहज रूप से पार होगी। भवंडर भी उसका कुछ बिगाड़ न पाएंगे।" महाराज जी ने यह बात सुनी और कुछ समय के लिए गम्भीर हो गए।

३०-७-७९

मैं, देवी जी तथा दीनानाथ जी बरामदे में सत्संग कर रहे थे। पंचकृत्यों पर बात चली। देवी जी ने कहा, "जो योगी पंचकृत्यात्मक

अभ्यास करता है उसे क्रोधादि चितभ्रम के चंगुल में फँसने का समय ही नही होता है वह तो अहर्निश इसी आनन्द में ब्रुडित होकर सुदर्शन चक्र को चलाने में लीन होता है। वास्तव में भगवान् कृष्ण का सुदर्शन चक्र यही पंचकृत्य ही है। जो योगी क्रोधादि करते हैं वे उस मल्लाह की भाँति हैं जो कुछ समय तक तीव्र गति से चप्पू चलाता है, फिर चप्पू चलाना छोड़कर उसकी गति से ही नौका चलाता है। ठीक उसी भाँति ये योगी अभ्यास को किनारे रखकर क्रोधादि भी करते हैं, किन्तु संवित् के अनुसंधान-परायण होकर ही वे ऐसा करते हैं। ये योगी पंचकृत्य पर अभी नहीं पहुँचे होते हैं।"

१०-८-७९

ईश्वर स्वरूप जी, मैं तथा देवी जी शहर गए थे। महाराज जी ने हमें मकान की चाबी दी और कहा, "तुम इसे अपने पास ही रखो। हम तुम्हारे बाद आएँगे।" हम दोनों ने चाबी अपने साथ रखी। दैवयोग से स्वामी जी हमसे पहले ही आ गए। बन्द था अतः वे खिड़की से ऊपर गए। जब हम लौटे तो हमें खूब डाँटा। हम निरुत्तर हो गए। हमारे साथ हमारे कुछ संबंधी भी बैठे थे। वे यह डाँट सहन न कर सके और वे घर चले गए। दूसरे दिन हम किसी के न्यौते के हेतु गए थे। वहाँ हमारे उन्हीं संबंधियों ने हमें स्वामी जी के साथ पुनः प्रसन्नवदन देखा, तो वे आश्चर्यचकित होकर प्रेम के अश्रु बहाने लगे। उनको देखकर देवी जी ने बड़े मधुर स्वर में कहा, "हम तो तन्दूर की रोटियों के सदृश हो गए हैं, आग की भट्टी में पड़ कर हम जहाँ खस्ता हो जाते हैं, वहाँ तन्दूर से निकल कर एकदम ठण्डे भी पड़ जाते हैं। इस क्रोध से ही तो हमारे अन्तःकरणों का कच्चापन दूर हो जाता है। रोना किसलिए है। गुरुजन तो यहाँ बाह्य रूप से ही क्रोध करते हैं। अन्दर से तो यह कल्याण ही होता है।" तब सभी प्रसन्न हो गए।

१५-८-७९

हमारे आश्रम में एक स्त्री स्वामी जी के पास अपना अड्डा जमाने आई थी। स्वामी जी को उस पर दया आई और वे उसे बीच-बीच में घुसाने लगे। कई वर्षों के बाद वह अपनी दुष्ट प्रकृति को छिपा न सकी। अतः वह देवी जी के विरुद्ध लोहा लेने लगी। एक दिन उसने लोगों के सम्मुख देवी जी के लिए कुछ अपशब्दों का प्रयोग किया। सभी ने उसे मना किया किन्तु वह न मानी। जब देवी जी को गोपीनाथ ने आकर सुनाया और कहा कि आपने उसे क्यों नहीं डाँटा तो देवी जी उसे समझाने लगीं, "देखो जब कुत्ता किसी की टाँग को काटता है तो क्या लोग कुत्ते को मारने का प्रयत्न करते हैं कि टाँग का इलाज करने लगते हैं। हमें तो ऐसे व्यक्ति से अलग रहने का उपाय करना चाहिए। उसे डाँटने का कोई प्रयोजन नहीं। उसकी प्रकृति तो सदा ऐसी ही रहेगी।"

२३-१२-७९

कमरे में रात्रि के समय ईश्वरस्वरूप जी ने कहा, "दोनों मेरे सम्मुख बैठकर अभ्यास करो।" मैंने धीमे स्वर में पूछा, "महाराज जी, आप तो कहते हैं कि सदा अनुसंधान परायण रहना चाहिए। बिना बोलने के समय अनुसंधान रहेगा किन्तु बोलने के समय कैसे अनुसंधान रहेगा?" महाराज जी अभी उत्तर विचार ही रहे थे कि देवी जी ने आवेश में आकर कहा, "जैसे व्यक्ति किसी समय बातें तो करता है, किन्तु उसका मन कुछ और ही विचरता होता है। इसी भाँति बोलते समय दृष्टि अपने अनुसंधान की ओर रखकर बात करता रहे इसी को बोलने में अभ्यास करना कहते हैं।"

५-२-८०

हम जन्मू से ४ फरवरी को श्रीनगर लौटे। रात्रि के समय जब हम

तीनों (ईश्वरस्वरूप जी, देवी जी तथा मैं) हॉल में बैठे थे, तो देवी जी ने ईश्वरस्वरूप जी से पूछा, "क्या आप दिल्ली में इन्दिरा गाँधी से मिलने गए थे?" महाराज जी उत्तर में बोले, "मैं उसका स्वभाव भाँपने गया था कि भारत का प्रधान मंत्री बनने से उसका स्वभाव परिवर्तित तो नहीं हुआ है।" तब देवी जी ने सरल शब्दों में कहा, "भला पश्मीना कभी बदल सकता है। उसे भले ही राजा ओढ़े अथवा चमार। दोनों को एक समान गर्मी प्रदान करेगा। महान् व्यक्ति थोड़े से बड़प्पन से बदला नहीं करते।" यह उत्तर सुन कर महाराज जी ने प्रसन्न होकर कहा, "तुमने ठीक कहा। इन्दिरा जी भी महान् हृदय रखती हैं। सम्राट् होते हुए भी नम्रता के गुण से शोभित हैं।"

९-३-८०

ईश्वरस्वरूप जी ने नौकरों से कहा, "तुम आज शाली धूप में सुखाने के लिए निकालो।" देवी जी निकट बैठी हुई थीं। अति सरल शब्दों में उन्होंने कहा, "ठीक है, यह शाली केवल अन्दर रहकर परिपक्व दशा को थोड़े ही प्राप्त होगी, जब तक कि बाह्य वायु का उसको स्पर्श न होगा। बाह्य वायु का स्पर्श लगने के पश्चात् ही यह खाने के योग्य बनेगी। इसी भांति योगी भी विश्वोत्तीर्ण दशा में रहकर कितना ही अभ्यास क्यों न करे जब तक विश्वमय दशा में रहकर अभ्यास नहीं करेगा, तब तक उसे पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होगी।" यह सुन कर महाराज जी भी हामी भरने लगे।

२०-३-८०

देवी जी बरामदे में कुछ गम्भीर मुद्रा में बैठी थीं। किसी ने आकर पूछा, "छिछले हृदय वाले शिष्य गुरुजनों के साथ-साथ रहकर अन्य शिष्यों पर अपना प्रभाव डालना चाहते हैं। क्या उनके इस व्यवहार से वे तथ्य रूप से सज्जन कहलाने की क्षमता रखते हैं?" देवी जी ने

सरल शब्दों में उत्तर दिया, "देखो अपने कृत्यों को सुधारे बिना कोई किसी के सहवास मात्र से महान् नहीं बनता। जैसे कोई भी महान् सन्त आदि हुक्का पीने की नली से हुक्का पियेगा तो क्या नली काली नहीं होगी। क्या वह सन्त जी के मुँह लगने से श्वेत हो जायेगी? वह तो अवश्य कालिमा के कारण काली ही रहेगी। सन्त का प्रभाव उस पर क्या पड़ेगा। इसी प्रकार जब तक अपने अन्तःकरण शुद्ध न होंगे, तब तक गुरुदेव क्या कर सकेंगे। शक्तिपात तो निजी स्वभाव में परिवर्तन स्वभावतः होने को ही कहते हैं।"

२०-३-८०

हम सभी बरामदे में बैठे थे। मैंने ईश्वरस्वरूप जी से कहा, "आप सभी शिष्यों को तो अभ्यास व पढ़ाने का समय देते हैं। केवल मुझे तथा देवी जी के लिए कोई समय नहीं देते ताकि हम भी आपके सम्मुख बैठ कर अभ्यास करते।" महाराज जी कहने लगे, "तुम दोनों जीवन मुक्ति का सुख भोग रहे हो।" इस पर देवी जी ने कहा, "जब रोगी डॉक्टर से कहेगा—मैं स्वस्थ हो गया हूँ तभी डॉक्टर की इतिकर्त्तव्यता समाप्त होगी तथा जब डॉक्टर सभी टेस्ट करवाने के बाद रोगी से कहे कि वह पूर्ण रूप से स्वस्थ है, तभी रोगी को पूर्ण विश्वास होगा। ठीक इसी भाँति जब शिष्य को परमार्थ की तृप्ति होगी तभी गुरुदेव की दया सफल होगी। अतः आपके कहने मात्र से हम कैसे जीवन मुक्त हैं। जब हमें तात्त्विक अनुभव होगा, तभी हम कृतार्थ हो जाएँगे।" यह सुनकर मैं चुप हो गई पर गुरुदेव ने अति प्रसन्न होकर कहा, "जब डॉक्टर रूपी गुरुदेव, रोगी रूपी शिष्य को लिख कर देता है कि उसे अब कोई रोग नहीं है तो फिर शंका की आशंका करना व्यर्थ है। गुरुदेव के कहने मात्र से भी शिष्य का कल्याण होता है।" गुरुदेव के इतना कहने मात्र से ही हमें सांत्वना मिली।

७-४-८०

ईश्वरस्वरूप जी ने हम दोनों से कहा, "सोने से पहले एक घंटा अभ्यास करना चाहिए।" देवी जी ने इस पर कहा, "हम ठीक उस किसान की भाँति बसन्त तथा हेमन्त में हल जोतने के समान अभ्यास करते हैं। थोड़ा सा फल प्राप्त होने पर पुनः हल जोतते रहते हैं। हल जोते बिना तात्त्विक लाभ की प्राप्ति होती तो ठीक था। यह तो किसानों की भाँति प्रतिवर्ष हल जोतने के समान वाली बात है।" यह सुनकर ईश्वरस्वरूप जी तनिक मुस्कुराकर चुप हो गए।

१५-४-८०

एक दिन आवेश में आकर देवी जी ने अपना अनुभव सुनाया। कहने लगीं, "आजकल मैं पूर्ण रूप में मस्त हूँ। केवल उसी पुराने अनुभव की टोह में हूँ। जब मैं कुल २० वर्ष की थी, मैं संसार के सम्मुख जा रही थी, उस समय अकस्मात् प्रभु ने इस पारमार्थिक प्रांगण में मुझे बिठाया, जिसका मुझे अनुभव ही न था। यह तो ऐसी ही बात है, जैसे किसी साधारण व्यक्ति को (जो सांसारिक व्यवहार में लगा हो), राजे के मोटर में भरसक बिठाकर सभी सुन्दर स्थलों की सैर करवाई जाए, ठीक उसी भांति मुझ पर प्रभु की अनुकम्पा हुई है। मेरा कोई भी अपना प्रयास न था। सब दैवी कृपा थी। मैं अहर्निश इस आनन्द में ब्रुडित रहती थी, जिसका वर्णन वाणी नहीं कर पाती। अतः शास्त्रों ने ठीक ही कहा है कि शक्तिपात के सम्मुख जीव का पुरुषकार 'प्रयास का' कोई भी मापदण्ड नहीं रखता।"

२६-६-८०

ईश्वर स्वरूप जी अपने नवीन शिष्यों के लिए किसी बात से उनके कई दिन व्याकुल हो गए। देवी जी ने उसकी दशा को देख कर किसी से कहा, "इनकी यह लीला भी समझ न आई। कितना भी कोई कहे,

जितना ऊँचा व्यक्ति हो उतनी ही उसकी क्रिया-शक्ति रूपी बाँहें भी उन्नति पर ही होती हैं। इतने महान् बनकर, फिर इतनी नीचे को बाँहें लटकाना कहाँ तक संभव हो सकता है। यहाँ किस हद तक नीचे बाँहें फैला पाएगा। समझ नहीं आता ये कहाँ पर बैठे हैं। लगता है गुरुदेव हमारी परीक्षा लेने के लिए यह लीला रचते हैं।''

६-४-८१

ईश्वरस्वरूप जी, मैं तथा देवी जी प्रातः समय बगीचे में टहल रहे थे। मैंने ईश्वरस्वरूप जी से कहा, ''आश्रम में दिन प्रतिदिन कार्य की अधिकता होती जा रही है। मेरा अभ्यास दैनिक व्यवहार के होने से तनिक भी नहीं हो पाता। न जाने आप कैसे और क्यों कर विमर्श बनाए रखते हैं।'' स्वरूप जी तो कुछ न बोले। देवी जी झट कह बैठीं। ''शिखा दृश्येत चाम्बरे।'' मैंने पूछा, ''इसका अर्थ कैसे हमारे प्रश्न के लिए समीचीन है?'' देवी जी ने कहा, ''मेरे वाक्य को स्वरूप जी समझ गए।'' मेरे पुनः पूछने पर स्वरूप जी बोले, ''सभी कार्य करने पर भी अनुसंधान परायण व्यक्ति के लिए वह कार्य परमार्थ को ही स्पष्ट करता है। जैसे लकड़ी तो स्वयं जलती है, पर उसकी शिखा रूपी लौ आकाश की ओर ही जाती है।'' इस पर देवी जी ने और भी टीका की, ''जैसे तुम या सभी बाह्य पदार्थ तो लकड़ी के तुल्य हैं पर अनुसंधान का बना रहना शिखा रूपी लौ तुल्य है। अतः उसकी लपट सदा की ओर ऊपर ही जाती रहेगी। इसी भाँति सभी कार्य करते रहने पर भी गुरुदेव सदा विमर्शपरायण होते हैं। हमें भी इसी प्रकार कालयापन करना चाहिए।''

१२-४-८१

हम तीनों प्रातः बरामदे में बैठे थे। ब्रूस पालक दूध लेने के लिए आया। महाराज जी को गद्दी पर विराजमान देखकर वह भी निकट

आकर बैठ गया। सत्संग चल पड़ा। ब्रूस ने प्रश्न किया, "हम अपनी ओर से तो अभ्यास करने के लिए सजग रहते हैं किन्तु कोई फल नहीं निकलता। यदि यही दशा रही तो हमें स्वरूप लाभ कैसे होगा? इस मार्ग में तो केवल चलना ही चलना है। विश्राम लेने की बात ही नहीं है। अतः क्यों न हम किसी अन्य उपाय का आश्रय लें जिससे स्वरूप साक्षात्कार होगा।" महाराज जी ने बात सुनी तो बड़े शान्त रूप में उदाहरण देकर समझाया। "देखो, तीन किसान थे। उनके गाँव में वर्षा नहीं होती थी, अतः स्वभावतः उनकी फसलें खराब होने लगीं। किसी ने आकर उन्हें कहा—तुम कुआँ खोदो, उसके जल से तुम्हारे खेत हरे-भरे होंगे। प्रथम किसान के खोदने पर उसे पत्थर ही मिले। उसने खोदना बंद किया और दूसरी जगह खोदने लगा। इसी भाँति वह रुकावटों का मुकाबला न करके, सारी भूमि में कुआँ खोदने की जगह ढूँढने लगा। दूसरे किसान के साथ भी ऐसा ही हुआ। तीसरा किसान बुद्धिमान् था। उसने कुआँ खोदना प्रारम्भ किया। पत्थर आए उन्हें निकालता गया। वह दृढ़तापूर्वक चार-पाँच दिन खोदता रहा। अनथक प्रयास के बाद जल के दर्शन हुए। हर्षित होकर अपनी खेती का सिंचन करने लगा। यही बात अभ्यास के विषय में भी है। दृढ़तापूर्वक श्रद्धा से अहर्निश अभ्यास करोगे तो फल अवश्य मिलेगा ही। कुछ नहीं होगा, फिर भी एकाग्रता की शान्ति को प्राप्त करोगे ही। बिना प्रयास के केवल मात्र बातें बनाने से यह मार्ग सिद्ध नहीं होता। घबराने का तो यहाँ प्रश्न ही नहीं। प्रसन्न रहना रहा प्रभु की लीला का अवलोकन करते रहो और अभ्यास परायण बने रहे। यही सिद्धि-प्राप्ति की कुंजी है।" उत्तर सुनकर ब्रूस पालक नतमस्तक हुआ और अपने घर गया।

१३-४-८१

दूसरे दिन प्रातः हम तीनों बरामदे में बैठे थे। ब्रूस पालक फिर उसी भाँति आया। ईश्वर स्वरूप जी को देखकर फिर सत्संग चल पड़ा।

महाराज जी उससे पूछा, "तुम उदास क्यों रहते हो?" ब्रूस ने उत्तर दिया, "जब अपने लक्ष्य पर न पहुँचा सका, तो उदास न रहूँगा तो क्यों कर प्रसन्न रहूँगा।" महाराज जी ने उत्तर दिया, "तुम्हारी उदासीनता से भला ईश्वर पर क्या रौब पडेगा। यह तो प्रभु को ढूँढने का उपाय नहीं है। यह तो ऐसी ही बात है कि बांबी में साँप घुस गया है। मूर्ख उसकी बांबी की मिटी को दबाकर सोचता है कि उसने साँप को मार दिया। परन्तु साँप तो अन्दर मूर्तिमान रूप से बैठा ही है। इसी भाँति जब तक हम सजग रहकर अभ्यास नहीं करगें तब तक तो बांबी की मिटी को दबाने के सदृश्य है। यह तो प्रभु दर्शन में सहायक नहीं हो सकता।" श्रद्धा तथा भक्ति-पूर्वक प्रभु को सदा स्मरण करना ही सफलता प्रदान करता है।

१५-४-८१

महाराज जी ने किसी आगन्तुक को उपदेश देने के लिए प्रातःकाल का समय दिया था। महाराज जी हॉल में गए, उसे वहाँ उपदेश देकर लौट आए। देवी जी ने मुझ से कहा, "देखो ईश्वर स्वरूप जी जामन देकर लौट रहे हैं। अब न मालूम किस जन्म में जाकर यह जमेगा। तभी इसकी मुक्ति होगी। उपदेश तो वास्तव में जामन के सदृश ही है। दूध को दही में परिवर्तित करना ही उपदेश है।"

२२-४-८१

हम तीनों प्रातः काल बरामदे में अभ्यास परायण थे। ब्रूस महाशय साढ़े आठ बजे आ गए। ईश्वर स्वरूप जी को प्रणाम किया। जन्मदिन के विषय पर प्रसंग चल पड़ा। महाराज जी ने उससे कहा, "अब जन्मदिन पर बहुत से लोग आने लगे हैं। हम आन्तरिक रूप से इतने लोगों का आना तथा इस प्रकार की प्रसिद्धि को नहीं चाहते हैं। पर परमात्मा की यही इच्छा है अतः हमारा उस पर वश ही क्या है। उमरखय्याम

ने भी अपनी रूबय्या में यही भाव प्रकट किए थे।

"Into this world!
Why? not knowing
Like water willy willy flowing
And He who Tossed Thee
Down into this world
He knows about it
All He knows. He knows."

२२-४-८१

इसी दिन ईश्वरस्वरूप जी से मैंने कहा, "मैं भी जन्मदिन के शुभ अवसर पर जनता के सम्मुख कुछ भाव प्रकट करूँगी। यदि जॉन कह पाएगा तो मैं क्यों नहीं कह पाऊँगी।" महाराज जी चुप होकर सुन रहे थे। देवी जी कह बैठीं, "मौन रहना ही ठीक है। समुद्र के किनारे पर बैठे हुए मेंढक खूब टर्राते रहते हैं, पर मध्य में बैठे हुए मगर कुछ नहीं बोलते हैं। वे तो बीच में ठहरे ही हैं। उन्होंने बोलना क्या है।" उत्तर सुनकर मैं चुप हो गई।

५-७-८१

हम सब मिलकर परात्रिंशिका ग्रन्थ समझ रहे थे। एक महाशय परात्रिंशिका का कुछ-कुछ पाठ तो समझ गए थे। वे आगे बढ़-बढ़ कर बातें करते जाते थे। सभी उनकी बातों को सुनकर चुप हो जाते थे। जब सभी अपने-अपने घरों को लौट गए तो देवी जी ने सतराम जी से कहा, "बिना विमर्श के शब्दों को रटना वैसे ही व्यर्थ है जैसे मेज़, कुर्सी, लोटा आदि जड़ पदार्थों को उठाना और संभालना है। पदार्थ न उठाए तो शब्दों को ही उठाते रहे। अन्तर क्या है। विमर्श होता तो इतना न बोलते।"

१०-७-८१

हम सभी परात्रिंशिका पढ़ कर निवृत्त हुए थे। मैं, देवी जी तथा ईश्वरस्वरूप जी अंगनाई में अकेले बैठे थे। बात चली प्रसंग परात्रिंशिका का था। देवी जी ने मेरी ओर संकेत करते हुए कहा, "त्यज धर्ममधर्मम् च इत्याादि का तात्पर्य तुमने क्या समझा? क्या यहाँ सचमुच धर्म और अधर्म छोड़ने का संकेत है? यह भाव नहीं है। 'त्यज' का अर्थ यहाँ लेना चाहिए कि इस अवस्था पर पहुँच कर धर्म और अधर्म छोड़ने नहीं हैं। ये स्वयं स्वाभवतः छूट जाते हैं। करना कुछ नहीं है। उस अवस्था के आ जाने पर स्वयं अवस्था ऐसी हो जाती है।" महाराज जी भी देवी जी की इस बात का अनुमोदन करने लगे।

११-७-८१

देवी जी ने एक दिन आवेश में आकर तात्त्विक और प्रतिदिन के हवन के लक्षण बताते हुए कहा, "हवन क्या है? सीधे-सीधे शब्दों में उठना, बैठना, खाना, पीना, बोलना चालना, वस्तुओं को उठाते रहना-यही पारमार्थिक हवन है। इस बीच में सजग रहना ही सच्ची आहुति है। यदि व्यक्ति इसी हवन का अभ्यास करता रहेगा, तो दिनों में मुक्त होने का भागी बनेगा। सदा सावधान रहने का अभ्यास करो। यही पारमार्थिक कुंजी है।"

१३-७-८१

मैं, ईश्वरस्वरूप जी तथा देवी जी बरामदे में प्रातःकाल बैठे थे। मैंने बात छेड़ी, "प्रभु का दर्शन जब नहीं होता है तो इसके लिए तपस्या की आवश्यकता है। मैं रविवार को यहाँ रहना छोड़ दूँगी। लोगों का संपर्क न रखने से स्वयं अन्तमुर्खता आ उपस्थित होगी, तो प्रभु के दर्शन सुलभ हो जाएँगे।" देवी जी से पूर्व ईश्वरस्वरूप जी कह बैठे, "लगातार अभ्यास परायण बने रहो। पढ़ाई बन्द करो। स्वयं अनुभव

आ उपस्थित होगा।" देवी जी ने तब कहा, "यह मार्ग मुर्गियों के बच्चों को पकड़ने की भाँति थोड़े ही है। 'तूती-तूती' करते जाएँगे और मुर्गियों के बच्चे हाथ आएँगे। यह तो सूक्ष्मता आत्मा की है। इस पर केवल विमर्श रखने का अभ्यास करना है। छोड़ना कुछ भी नहीं है। जो छूटता है, वह स्वयं छूटता है।" महाराज जी ने कहा, "तुम्हें क्या छूटा है?" तब देवी जी ने कहा, "मैंने ग्रहण ही क्या किया है जो छूटेगा। सब छूटा ही छूटा है।" तब महाराज जी ने कहा, "तो क्या दूसरे शब्दों में तुम जीवन्मुक्त हो?" देवी जी ने कहा, "महाराज जी के सम्मुख तो नहीं हूँ पर अपने लक्ष्य के सम्मुख तो हूँ ही।" हम दोनों उत्तर सुनकर हँस पड़े।

१४-७-८१

प्रातःकाल का समय था। ईश्वर स्वरूप जी अपने सोमवार के मौन से निवृत्त हुए थे। मैं तथा देवी जी मंगलवार की प्रातः ऊपर उनके दर्शन करने उनके कमरे में गए। महाराज जी ने देवी जी से कहा, "हम कल अंग्रेजों को पढ़ाएँगे।" देवी जी ने सरल शब्दों में कहा, "पढ़ाते जाइए। इससे हमें क्या फर्क पड़ेगा। पढ़ाना तो ठीक उस संगतरे बेचने वाले के तुल्य है जो छाबडी लेकर 'संतरे ले लो' की धुन लगाए रहता है। कभी उठा कर एक संतरा भी खुद नहीं खाता। इसकी कीमत ही उसका फल है। ठीक उसी प्रकार महात्मा बन जो केवल पढ़ाने की धुन में लगे रहते हैं। भगवान् है- भगवान् है। इसी चक्कर में पड़े रहते हैं। यह कहने का फल उन्हें ऐश्वर्य, कार आदि मिलते रहते हैं। जब वह इस भगवान् के अमृत का आनन्द स्वयं चखने बैठेंगे, उस समय उसे ऐश्वर्य के भोगने की इच्छा न रहकर केवल रसास्वादन में ही आनन्द आएगा। फिर वह भला किसे और क्यों पढ़ाएगा।" देवी जी का यह उदाहरण सुन कर महाराज जी ने अति प्रसन्न होकर कहा, "तुमने तो अति सुन्दर उपमा दी। शाबाश!"

विस्मयावह बातें

(१)

एक दिन पारम्परिक वार्त्तालाप करते-करते किसी एक शिष्या ने कहा कि स्वामी जी तो साक्षात् शिव का रूप हैं किन्तु उन्हें कई शिष्याएँ अपने प्रिय की भाँति देखना चाहती हैं। इस पर देवी जी ने अति सरल शब्दों में कहा, "भला शंकर की भी कोई भार्या बनने का दावा कर सकेगी। कहने में आता है—राधा रानी सीता रानी। किन्तु किसी ने आज तक पार्वती को रानी की उपाधि न दी। जिस कोटि पर शंकर अवस्थित हैं उसी पर पार्वती भी विराजमान है। अतः पार्वती शंकर की अर्धांगिनी होकर भी अपनी भिन्न सत्ता रख रही है।"

(२)

एक बार किसी ने कहा कि छोटा कद होना बेकार है। तब देवी जी तुरन्त कह बैठीं कि इत्र की बोतलें तो छोटी हुआ करती हैं। लम्बी बोतलें तो मिट्टी के तेल की हुआ करती हैं।

(३)

एक बार आश्रम का सेवक कहने आया, "क्या मैं लकड़ी के बूरे को इकट्ठा करूँ?" देवी जी ने मुस्कुराते हुए कहा, "इतना अपने आपको तपस्या की भट्ठी में डालकर भी क्या यह बूरा-बुरा ही रहा। अति विस्मय की बात है।" इस पर वह सेवक चुप सा हो गया।

(४)

एक दिन देवी जी से मैंने विमन होकर कहा, "हमारा अपना मकान होकर हमरे व्यर्थ ही उसे बेच डाला। अब हम स्वतंत्र रूप से भजन कहाँ करेंगे?" तब देवी जी ने तनिक झाड़ कर कहा, "भगवान् ने इतना सुन्दर छत डालकर शरीर रूपी मकान दिया है। इससे बढ़कर

भजन कहाँ किया जाएगा। मकान को लेकर क्या करना है। भजन तो लगन के होने से किया जाता है। न कि मकान के होने पर।"

(५)

एक दिन मैंने हँसते-हँसते देवी जी से कहा, "न मालूम हमारे आश्रम में क्यों कर साधना विहीन व्यक्ति आकर हाथ डालने लगे हैं। इसका क्या तात्पर्य है?" देवी जी ने उत्तर दिया, "देखते नहीं हो आजकल शुद्ध घी के साथ ही डालडा भी तो चल पड़ा है। बहुतायत डालडा की ही है। शुद्ध घी तो कहीं कहीं ही देखने को मिलता है। वैसे ही सच्चे संत मौन होकर बैठ गए और नकली मैदान में आने लगे।"

(६)

एक दिन ईश्वरस्वरूप जी डेनिस से कह रहे थे – "लव इज़ लॉस्ट, एवरीथिंग इज़ लॉस्ट, डिवोशन इज़ लॉस्ट एवरीथिंग इज़ लॉस्ट" देवी जी ने धीमे स्वर में कहा, "करेक्टर इज़ लॉस्ट एवरीथिंग इज़ लॉस्ट।" स्वामी जी व डेनिस इस वाक्य को सुनकर चुप हो गए।

(७)

एक दिन रात्रि का भोजन करते समय मैंने देवी जी से कहा, "आप रात्रि के समय दही का सेवन न करें। इससे साँस फूलता है।" देवी जी ने उत्तर दिया, "यह क्या अनोखी बात है। साँस तो आ जा रहा है। अतः साँस फूलना कौन-सी विचित्र बात है। जहाँ साँस का संचार होगा, वहाँ वह फूलेगा भी फिर घबराने की क्या बात।"



तीसरा खण्ड
कविता

वह अमरता की पुजारिन

—राज दुलारी कदलबजू

(१)

वह अमरता की पुजारिन थी।
वह सदा सत्य सनातन थी॥

(२)

वह गुरुपथ की पथगामी थी।
वह साक्षात् देवी, अन्तरयामी थी॥

(३)

वह अनबुझे दीपक की लौ थी।
वह मोह, अन्धकार की उजाला थी॥

(४)

वह जीवित संगमरमर की मूरत थी।
वह गुरु चरणों की सुन्दर सूरत थी॥

(५)

उन्हें मेरा शत शत नतमस्तक प्रणाम।
मैं तुच्छ जीव हूँ, मिले वहीं आराम॥

(६)

मुझे दर दर क्यों भटकना है।
तेरे चरण कमलों को ही पकड़ना है।

(७)

हे देवी सब का कल्याण करो।
इस मस्तानी को कुछ सूक्ष्म दान दो॥

कश्मीरी भजन

मअज्य शारिका

(१)

मअज्य शारिका मन्य म्यानि छुय चोनवास
बन्धन म्यअ कास बन्धनम्यस कासं
ज़गि हुन्द जामअ आम नयरास
बन्धन म्यअ कांस बन्धन म्यस कास

(२)

पअरम प्रकाश म्यति हावतम
अनुग्रहुक अथ प्यठ म्यअ थावतम
चटनावतम अपज्युक यि ब्वुड़ वुल्लास
बन्धन म्यअ कास०

(३)

कूत स्वन्दर ज़गि हून्द छुय रफतार
वूजुम तथ दिहअम मअज्य च़्यय तार
छन्य लग्यम पत मा गछ मअज्य उदास
बन्धन म्यअ कास०

(४)

युनअ गछुन छुय यत्यिकुय ब्वुड न्ययम
च्यय रुछ कुस दियिम अभ्यनिश मअज्य छयन
मेहरि च्यानि बत्यअ मा लारि लारि योर आस
बन्धन म्यअ कास०

(५)

देवान मअज्य गअमच्य छस रुबअ यत्ये
प्रारान मअज्य छस लभथ कत्यि यत्ये
छुय चुवा तरफ तेलान चे़नुय भास
बन्धनम्यअ कास०

(६)

ललवान छसय बअड़ लोल धग
मअज़्य च़्यानि रुछ कुस दियम सग
यिनअ माया करच्यम यति डुब्र ड़ास
बन्धन म्यअ कास०

(७)

राज़रियन मअज़्ये लगये च्यय
अथरवुट च़्यानि रवुछ कुस करि म्ये
जीवुत वुछुम करान अपुज़ कयास
बन्धन म्यअ कास०

(८)

अज़ छुय मन म्योन स्यठाह शाद
म्यानि माज़ि घुतुम अन्दरी नाद
पअज़्यि किन्य करतम मन्य मंज वास
बन्धन म्यअ०

(९)

'मस्तानि' व्रअवअथ च्यय नज़राह
अद आमुत छुस अथि पज़रअह
च़्यअय दिवान रूज़ हअम दुहय दिलास
बन्धन म्यअ०

भजन नं० २. नूरेक नूर

१.

श्री शारिकायि चऽ छंरव नूरुंक नूंर।
दंय वन च़अ छंरवय कंनदूंर।
मलिथयं च़ऽ आसंरंव त्यांग सूंर
सऽहमसंय करांन आसंख गूंर गूंर॥

२.

दयं ध्यांन रुज़ंव च़ंऽ कंरिथंय।
सतंकुंय सोदांह थवुंथ कंरिथयं।
मंनि मँज़े रटिथं खुडंन्य संबूर॥
श्री शारिकायि च़ंऽ छंस०

३.

कोतांह अज़मोवेथ यिं ज़गत।
अमि मन्जय च़ोरूथ कुनंय संथ।
ज़ांलिथ थवंथ चेऽ ज्ञानंच्चि ज़ूंर॥
श्री शारिका च़ंऽ छस०

४.

लोलं च़ंऽ आंसख बंलोस भअगरान।
यसं यिं कर्मस, तंस त्यूत बनांनं
चोनं अनुग्रंहुंक भण्डारं छु मोशूंर॥
श्री शारिका च़ंऽ छस

५.

ज़ीग मँज़ कमय यिं छि ज़ानान।

मगर सतज़न आंस्य अस्तुति कंरान।
व्यवंहारंस भँज़ं तिऽ तोलांन पूंर॥
श्री शारिका च़ंऽ छस०

६.

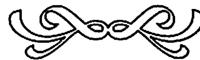
बअत्यि असअस दूरि व्यथयिवान
ज्ञान सागरस गुअत गुअथ करान
थअवथम कलस व्यठ ध्यान लूर
शारिकयि चअ०

७.

मअजय बअ छस अरव मुसाफिर
म्यति करतअ ज्येरि अकि खास रवअतिर
अथ रुट करान सारिनियछु पीर
शारिकयि०

८

'मस्तानि' ति छय रोज़ान पकान
जांह नय थकान नय कुन पकान
मन छुस वनिथ अख बुअड़ बम्बूर
सोहंम नादुक करान गूर गूर शारिकायि



महादेवी

प्रो० मखनलाल कुकिलू

च़अ दीवी छरव परादेवी वनव क्याह
च़अ ध्वन दीदन बसिथ म्यान्यन वनव क्याह

(१)

छअ़ अज़ आमअत्य सम्यिथ अंस्य च्योन दरबार
करान पूजा च्यअ लोलअच्च च्अं छंरव सरदार
च़अ छरव जन जून जोतान अस्य वनव क्याह
च़अ दीवी छरव परादेवी०।

(२)

चअ़ रोज़तम नरव डरव गोमुत बअ बेहाल
वनय क्याह नाव छम यीरान द्यितम वुन्य तार
चअ़ छरव भासान सत्युम आफताब वनव अस्य क्याह
च़अ दीवी छरव०

(३)

चअ थव अज़ अरव रछाह कन लोल नादन
छुअ दस्तूर द्युन दयादान सन्त साधन
च 'अनुसूया' सती छरव अस्य वनववयाह
चअ दीवी छरव परादेवी०

(४)

छि अज सोरुय कुटम्ब ह्यथ योर आमअत्य
करान जयकार छि अज सर खम बन्येमअत्य
चअ छख गंगा हरान पाप अस्य वनव वयाह
चअ दीवी छरव०

(५)

चअ मंज, घटि हावतम सत कुय यि न्वुन गाश
वुपदेम म्यअ सत् ब्वुध सत, कुय गछि हयेम सदा-भास
चअ न्वुन "संवितप्रकाश"
छरव अस्य वनव वयाह चअ टीवी छरव०

(६)

रटुम अज यछि पछि मअज्य चोन दामन
यकीन छुम सरव चअ गालख पाप शापन
चअ जान छरव परमशिव सन्ज अस्य वनव वयाह
चअ दी वी छख परादेवी०

(७)

चअ चअठ भवपाश, आमअत्य ग्वुलि गंडिथ अज़
चअ कअर यअल कर्मखुर म्योन गछ वुडिथअज़
चअ छरव राधा तअ सीता अस्य वनव क्याह
चअ दीवी छरव परादेवी०

(८)

दितम मअज्य अज़ पनुन ह्चुह म्यति बरदाश
नितम तथ वत्यि प्यठ यत्यि आसि चोन गाश
च़ छरव परवान शमहस अस्य वनव वयाह
चअ दीवी छरव परादेवी०

नोट - ६ दिसम्बर सन् १९८५ को शारिका देवी जी के जन्मदिन पर ईशबर निशात में मैने ईश्वरस्वरूप के चरणों पर रखकर यह कविता पढ़ी। सद्गुरु महाराज इसे सुनकर भाव विभोर हुवे। क्यों न होते? अपने चेले को शक्कर के रूप में देखकर सद्गुरु भी मन ही मन प्रफुल्लित हो उठते हैं।

शिवयोगिनी देवी शारिकाजी

—अवतार कृष्ण गंजू

सोपोर – दिल्ली

अख पुण्य आत्मा थन प्यव सोपोरी सअबनि घरेय।

योगभ्रष्ट आत्मा जन्मस आव सोपोरी सअबनि घरेय॥

नाव तस शारिका प्यव सोपोरी सअबनि घरेय।

रछनुअ आयि धार्मिक व्यवहारय सोपोरी सअबनि घरेय॥

जन्म ह्युतुन अमि किन्य बन्ये शिवयोगिनी।

इशबर तरन किन्य शारिका बनेयि शिवयोगिनी॥

ईशवरस्वरूपुन सायि प्रोवुन बनेयि शिवयोगिनी।

स्वामीजीयनि शबद्ध बनेयि शिवयोगिनी॥

ग्वरु शबद्धस क्याह मान थोवुन बनेयि शिवयोगिनी।

यू-गुक चन्द्रायुन चोपुन बनेयि शिवयोगिनी॥

०इशबर तरन किन्य शारिका बनेयि शिवयोगिनी०

शिव पानु शारिकायि मंज तअ बनिना शिवयोगिनी।

कोर पान अथ रुट इशबरि शिवन अमिस योगिनी।

जगतस हअविथ ध्युतुन छस शिवयोगिनी।

ग्वुरु परिवारस मान थुव अमि शिवयोगिनी॥

पूरु जीवनस शिव क्रीडा वुच्छ अमि योगिनी।

युथ भाग्यवान आत्मा बनिना शिवयोगिनी।

०इशबर तरन किन्य शारिका बनेयि शिवयोगिनी०

शीतल, शान्त, असवुन रोजुन तु मुद्धुर बोलुन।

ओस स्वभाव जन्मय देवी शारिकाये॥

तोरय लीखित ओस शिवलीन गछुन शारिकाये।
तम्यै परजनोव इशबर शिव शारिकाये॥
बनेयि तम्यै कृपायि शारिका शिवयोगिनी।
ग्वरु कृपायि सूती प्रजलान रूज़स शिवयोगिनी॥
०इशबर तरन किन्य शारिका बनेयि शिवयोगिनी०
जिन्द पानय हअविथ ध्युतुन छस शिवयोगिनी।
द्वेह त्रावुनु ति हाविथ ध्युतुन छस शिंवयोगिनी॥
ईशवरस्वरूपन व्वनुनस परभैरवलीनी।
ययि शिवस मंज लीन गयि सु योगिनी॥
म्योन नमन छु तस पराशक्तीय शिवयोगिनी।
म्योन नमण छु तस शारिका शिवयोगिनी॥
०इशबर तरनु किन्य शारिका बनेयि शिवयोगिनी०



देवी शारिकाजी

—गौरीश्वरी

काश्मीर मंडलच शक्ति अवतार
सोन छुस प्रणाम बारम्बार
ऋषि वारि हनज़ शारिका अवतार॥
मंजहोर जून पछ च दोय चोरूख
राधिका रानी निश जन्म दोरूख
सोपर्य कुलस कोरूख उधार।
जिया लाल सोपारिञ साधु कूर
बडिग्रहसत मज़ रूज़ मअचदूर
ब्रह्मचअर्य जीवन करुख मन्जूर
बव सन्दिस बुंगलस मंज रूजिथ
गुरु भक्ति मंज़ पूर फसिथ,
त्रोवुख दुहुक सुख त-रुत करार॥
गम्बीर कोमल सनि खोत सञ,
गुप्त योगी ज़ाहं न न्येरान नञ,
शर्म धर्म पोलुन ग्वुरन्य आज्ञा कार॥
बलवीर सन्त दयाइयि किच़ थज़।
गुरु शिष्य भावच सिथिर कञ,
ईश्वर आश्रमस मंज़ शूबिदार॥
तीक्षण बुद्ध नोज़ुक त निर्लीप सन्यासी,
शभ दम अध्ययन वनवासी
दम दम सत्गुरुन सीवाकार॥

आदम सीर भोज़ गुरूदेवन,
माजि हन्द पअ य्य ख्यावन त चावन
त्रुख बोलान विश्वासाधार॥
रनान त बअगरान अन्नपूर्णा
गुरु थालस अस करान नन्यथ सीवा,
पछ पूज़ाइ हुन्द ओसुख गाटजार॥
सोन छुख प्रणाम बारम्बार॥
पलंग त बिस्तर न सजावान,
रत्य रातस होशयार रोजान,
गुरु रव्राावि ठसस करान इन्तिजार॥
गंडन गोसोञ त खेन बुल बुल,
षेहजारस किज़ चन्दन कुल,
सूहम तोसस खारान तार॥ सोन०
कन्या भाव तै ब्रह्मचार्य व्रत,
ग्रहसथियन हावान रच् रच् वथ,
ह्यछनावन ज्ञान ध्यान समचार॥
गरीबन बेकसन सहार दिवान,
समस्यान समाधान छांडान,
स्नेह त भंढार॥ सोन०.......
रूप ध्येद त लल,
साधनाई मंज़ रूज़िथ अटल,
अनुसंधानस मंज़ करान व्यवहार॥
सोपोर्यन हंज़ विगिञे ज्यूरय,
आमचअ इषिबरि रोज़नि यूर्य,
प्रभादेवी त शारिका अवतार॥ सोन........

भूज़ितव सार्यी दियतव ध्यान,
ईश्वरस्वरूपज शिष्य प्रधान,
गुॅरव ग्यवुरव परा शक्ति बार-बार॥
द्राय गुरून ब्रोंठ शोभायमान,
तिम अस्य शारिके शारिके वनान,
फ़ागन गटपछ त्रय अपरम्पार॥
शताब्दी जन्मदिन छुख मुबारक,
तोशान अज़ चन्द्रभम त तारख,
गौरी हुन्द गुल्यगंडिथ भूज़िव ज़ार पार सोन॰........



श्रद्धा पुष्प

—विजय लक्ष्मी
हृदय नाथ कोकरू

सतीसर में खिले पौधे, फल फूल अनेक।
इसी में प्रकट हुई, दिव्य लता अपूर्व एक॥
शारिका नाम, सोपोरी, जियालाल सुपुत्री।
मृदुभाषी, दयालु, महान, परोपकारी॥
सुन्दर, कोमल, अलौकिक, कँवल पंखुड़ी सी।
इसकी रक्षा के लिए, ईश्वर स्वरूप बने माली॥
ज्ञान, ध्यान, उपासना से सींचा, विकसित किया।
पवन झोंकों से सुरक्षित, द्रवित न होने दिया॥
घोर तपस्या, सेवा, अध्ययन से पूर्णता पाई।
श्वेत पद्म सी सुगन्धित, गुरु चरणों में शीश झुकाई॥
खोजा था जिस रत्न को, पाया अपने आप में।
नहीं छिपाया, बाँट दिया, जितना था जिसके भाग्य में॥
संसारी ने सुख माँगा, परमार्थी रुचि ध्यान में।
निष्ठा, सेवा, ज्ञान से पाया, विश्वास गुरु देव का॥
उनके चरणों में समर्पित देह अपना कर दिया।
शारिके, हे शारिके ! गुरुदेव पुकारे शारिके।
गुरुदेव की सर्वस्व, शारिके ! हे शारिके !
बहन प्यारी प्रभा जी भी कहे शारिके, हे शारिके।
विजय लक्ष्मी की गुरु रूपिणी, हे तपस्विनी शारिके।

ॐ जय गुरुदेव

देवी शारिका जी द्वारा कहे गये कश्मीरी भाषा में, कविताओं का हिन्दी अनुवाद, मेरी अल्प बुद्धि द्वारा, जो हो सका, वह प्रस्तुत है।

-योगेन्द्र तिक्कु

प्रकाशित पुस्तकानुसार

(पहली)

आया था मैं पूर्ण दिगम्बर, ब्रह्मा ने भेजा उपहार,
चर्म धौंकनी गले पड़ गई, ब्रह्मा ने भेजा उपहार॥
पंचतत्व की चीज़ बनीं इक, अल्प समय की नियति रही,
लिपट गया विषधारी नाग, ब्रह्मा ने भेजा उपहार ॥
ब्रह्मा की ही यह सृष्टि, माया भीतर इक बस्ती,
कोई रह न सका निःस्पर्श, ब्रह्मा ने भेजा उपहार॥
माया के पीछे भागे, जन्म मरण फिर ना छूटे,
छूटा आवन जावन अब, ब्रह्मा ने भेजा उपहार॥
मार्ग मुझे दिखलाया किसने, सद्‌गुरु पर मुझको विश्वास,
परम ज्ञान का दिया प्रकाश, ब्रह्मा ने भेजा उपहार॥
योगी अपनी मस्ती में, ज्ञानी अपनी हस्ती में,
पियें पियाला आनन्द का, ब्रह्मा ने भेजा उपहार॥
दिवस बिताया अर्जन और सँभाल,
हाथ लगा केवल नुकसान,

रे जीव, जानी सब एक ही समान,
फिर नहीं होय तुम्हें नुकसान॥०॥

(दूसरी)

क्या देखा है कहीं मेरा श्याम सुन्दर,
क्या देखा है कहीं मेरा श्याम सुन्दर॥
जो है बाहर, है वही मन के भीतर,
क्या देखा है कहीं मेरा श्याम सुन्दर॥
वृत्तियाँ हैं गोपियाँ, जो छल से हर ले गईं,
दूर हुआ घर से वो, दूरियाँ भी बढ़ गईं
घर हैं सभी उसके, पर नहीं सुन्दर॥
क्या देखा है कहीं, मेरा श्याम सुन्दर॥
हाथ में ही मुरली और पहने पीतांबर,
नैना हैं चंचल और नाम मुरली धर,
मोह ले है मन को वह मुरली बजा कर,
क्या देखा है कहीं मेरा श्याम सुन्दर॥
प्राणापान तो देवकी वसुदेव हैं,
एक कारागार ही मेरी यह देह है,
मध्य में है जन्मा कृष्ण सुन्दर
क्या देखा है कहीं मेरा श्याम सुन्दर
क्या देखा है कहीं मेरा श्याम सुन्दर॥
ये मंदिर है मेरा बड़ा शानदार,
बैठे हैं जिसमें बड़े सरकार,
शोध कर उनको देखूँगा एक बार,
ये मंदिर है मेरा बड़ा शानदार॥

दोगुन पंच द्वार, मंदिर के बीच,
एकादश पारद समान है मन दीप,
हू हू कर इत उत धाये ये दीप,
घनिष्ठ मित्र उसका तो है संसार,
ये मंदिर है मेरा बड़ा शानदार॥

मान की न मुझको कोई अभिलाषा,
ना ही संसार की है कोई आशा,
अंधी आंखों को, गुरु ने प्रकाशा,
मुझे नहीं संसार की है कोई आशा॥

गुरु ने ही चेतनता मुझमें जगाई,
भाग्य में ही मेरे है लेखनी चलाई,
मेरी सूनी अँखियों को गुरु ने प्रकाशा,
मुझे नहीं संसार की है कोई आशा॥

(तीसरी)

सजग स्वयं मैं रहूँ किन्तु, टूटे है चेतनता की तार,
काम, क्रोध, मोह और अहँ, मानो दौड़े हैं अश्व सवार,
माँ माया का यह व्यवहार, अनजानों पर घोर प्रहार,
शक्तिपात की दृष्टि डाली, चेतनता में आये करार,
चेतन रह कर द्वार खुलेगा, पहुँचूँगी मैं तत्व दरबार,
बजे जहाँ बाजे व सितार जीव प छाए सत्य खुमार,
ना ही बाजा ना ही सितार, चेतनता की है यह तार,
वो मैं हूँ और मैं ही वो बस वहीं मिटे सारा संसार,
मान देह का आया यहाँ, द्वार पे साँकल लगती वहाँ,
नृप हो देह भाव में फँसकर, फिर नाम जीव का धर कर,

पलट चले पहुँचे फिर वहाँ, तेज ओत प्रोत हो जहाँ,
सजग देखती छवि सुन्दर, पर छूटे चेतनाता की तार॥०॥

चित् देव मेरा क्या खूब सुन्दर है,
हर देवता और जीव के अंदर है॥
माया में रह कर भी है, निर्लेप वहीं,
भेद भाव की तो तनिक भी छुअन नहीं,
ध्यान रखता वह स्वयं का, स्वयं है,
चित् देव मेरा क्या खूब सुन्दर है॥
बिन रूप रंग केवल अनुभूत होता है,
उसमें भी मानो अलग ही दिखता है,
प्रयोजन बिना ही अपना रूप छिपा लेता है,
चित् देव मेरा क्या खूब सुन्दर है॥

चूक हो गई, मेरी चूक हो गई,
असावधानी हुई, असावधानी हुई॥
पहने थी स्वर्गिक, वस्त्र अलौकिक
काम तथा क्रोध ने कर दिए छिद्रित,
द्वैत रूपी मूषिका ये वस्त्र खा गई,
चूक हो गई, मेरी चूक हो गई॥
ये चूक ही जीव भाव का चिन्ह है,
ये चूक ही वासनाओं से प्रेम है,
ये चूक ही मेरे गले पड़ गई,
चूक हो गई, मेरी चूक हो गई॥
जीव तू जो चेतन रहेगा सदा,
भीतर मधुर संगीत सुनेगा,

संगीत के ही बीच में नींद आ गई,
चूक हो गई, मेरी चूक हो गई॥
धार कर आया मैं जीव का रूप,
भुला दिया अपना वो दिव्य स्वरूप
इतने में काल शक्ति पँहुच ही गई,
चूक हो गई, मेरी चूक हो गई॥
चरण फेर लिए जब संसार से,
कुछ समय बिताया एकांतवास में,
तब तत्व शक्ति तो मिल ही गई,
चूक हो गई, मेरी चूक हो गई॥
एक दिन जाना कि मैं कौन हूँ,
सत्चित् आनन्द का ही रूप हूँ,
विषयों से तब तो घृणा हो गई,
चूक हो गई, मेरी चूक हो गई॥
शक्तिपात की जब किरणें पडीं,
जग में स्वयं की ही सृष्टि दिखी,
नवपुष्प की शांति में खिल उठी।
जहाँ से आई, वहीं का था भास,
सर्व में देखा स्वयं का विकास,
काल का वहीं पर हो गया ग्रास,
सर्व में देखा स्वयं का विकास,
सर्व में देखा स्वयं का विकास॥

अंतिम आत्म कथा

क्या करूँ कुम्हलाई हूँ मैं, द्वार लाँघा ना कभी,
शीश झुकाए सदा रही मैं, शीश उठाया ना कभी,
बंद नेत्र से सब कुछ देखा, नेत्र खोले ना कभी,
रही हरिण सी शांत वनों में, फुदकी मारी ना कभी,
कस्तूरी थी भीतर ही, पाई सुवास किन्तु बाहर,
बाण लिए सब पीछा करते, हाथ लगी मैं पर न कभी॥



